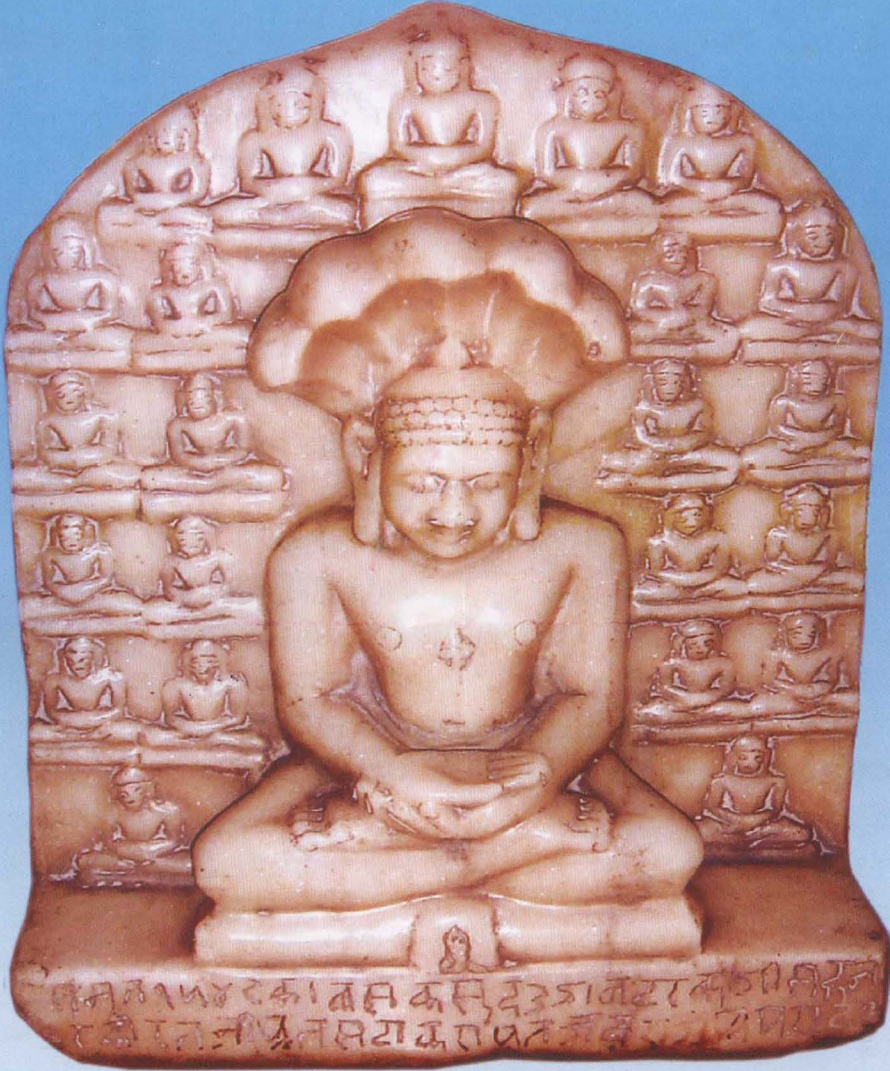


जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535



श्री दि. जैनमन्दिर नारायना (जिला-दूदू)
राजस्थान में विराजमान 500 वर्ष प्राचीन चौबीसी जिनप्रतिमा
यह खुदाई में प्राप्त हुई थी।

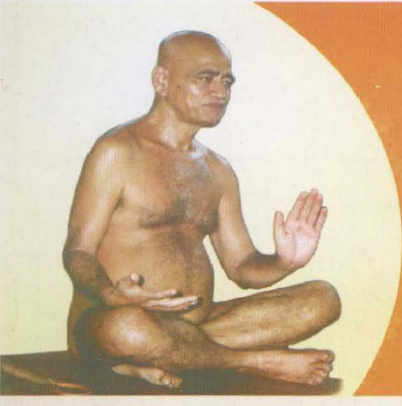
ज्येष्ठ, वि.सं. 2066

मई 2009

• मूल्य 15/-
www.jainelibrary.org

पर-सम्पदा-हरण निम्नकोटि का कर्म

आचार्य श्री विद्यासागर जी



जब कभी धरा पर प्रलय हुआ
यह श्रेय जाता है केवल जल को
धरती को शीतलता का लोभ दे
इसे लूटा है,
इसीलिए आज
यह धरती धरा रह गई
न ही वसुंधरा रही न वसुधा!
और
वह जल रत्नाकर बना है—
बहा-बहा कर
धरती के वैभव को ले गया है।

पर-सम्पदा की ओर दृष्टि जाना
अज्ञान को बताता है,
और
पर-सम्पदा हरण कर संग्रह करना
मोह-मूर्च्छा का अतिरेक है।
यह अति निम्न-कोटि का कर्म है
स्व-पर को सताना है,
नीच-नरकों में जा जीवन बिताना है।
यह निन्द्य कर्म करके
जलधि ने जड़-धी का,
बुद्धि-हीनता का, परिचय दिया है
अपने नाम को सार्थक बनाया है।
अपने साथ दुर्व्यवहार होने पर भी
प्रतिकार नहीं करने का
संकल्प लिया है धरती ने,
इसीलिए तो धरती

सर्व-सहा कहलाती है
सर्व-स्वाहा नहीं---
और सर्व-सहा होना ही
सर्वस्व को पाना है जीवन में
सन्तों का पथ यही गाता है।

न्याय-पथ के पथिक बने
सूर्य-नारायण से यह अन्याय
देखा नहीं गया, सहा नहीं गया
और
अपने मुख से किसी से
कहा नहीं गया!
फिर भी, अकर्मण्य नहीं हुआ वह
बार-बार प्रयास चलता रहा सूर्य का,
अन्याय पक्ष के विलय के लिए
न्याय पक्ष की विजय के लिए।

लो! प्रखर-प्रखरतर अपनी किरणों से
जलधि के जल को
जला-जला कर सुखाया,
चुरा कर भीतर रखा हुआ
अपार धन-वैभव दिख गया
सुरों, सुराधिपों को!
इस पर भी स्वभाव तो... देखो,
जला हुआ जल वाष्प में ढला
जलद बन जल बरसाता रहा
और
अपने दोष-छद्म छुपाता रहा
जलधि को बार-बार भर कर...!

मूकमाटी (पृष्ठ १८९-१९१) से साभार

मई 2009

मासिक

वर्ष 8,

अङ्क 5

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : परसम्पदा-हरण निम्नकोटि का कर्म
: आचार्य श्री विद्यासागर जी आ.पृ. 2
- ◆ बिहारी की गजलें आ.पृ. 3
- ◆ मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ आ.पृ. 4
- ◆ सम्पादकीय : दिशाओं का शुभाशुभत्व स्वाभाविक नहीं, आरोपित है 2
- ◆ प्रवचन : कालद्रव्य प्रभावक नहीं (द्वितीय अंश)
: आचार्य श्री विद्यासागर जी 6
- ◆ लेख
 - नग्नता : पारदर्शिता : मुनि श्री क्षमासागर जी 10
 - दिगम्बरजैन-परम्परानुसार तीर्थंकर भगवान् चातुर्मास नहीं करते : आर्थिका श्री चन्दनामती जी 12
 - श्रावक की कर्तव्यनिष्ठा : स्व० पं० माणिकचन्द्र जी 'कौन्देय' 14
 - तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन : पं० महेशकुमार जैन, व्याख्याता 19
 - आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज : श्रेष्ठ शिष्य, श्रेष्ठ गुरु : डॉ० सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' 22
 - अध्यात्म व विज्ञान की जुगलबन्दी है गुणायतन : प्राचार्य पं० निहालचन्द्र जैन 24
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 26
- ◆ अतिशयक्षेत्र निमोला का परिचय 29
- ◆ समाचार
 - पूज्य मुनि श्री सुमतिसागर जी का पुण्य समाधिमरण 30
 - सदलगा में महावीर जयन्ती सम्पन्न 31
 - श्रीसेवायतन तथा अन्य समाचार 11,18, 21, 25
- ◆ जिनभाषित के नये आजीवन सदस्य 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

दिशाओं का शुभाशुभत्व स्वाभाविक नहीं, आरोपित है

लौकिक और धार्मिक कार्यों में दिशाओं का बड़ा महत्व माना गया है। लोकप्रचलित वास्तुशास्त्र तो दिशाओं पर ही आधारित है। गृह का कौनसा अंग या भाग किस दिशा में होने पर शुभ (शुभफलदायक) होता है और किस दिशा में होने पर अशुभ (अशुभफलदायक), इसका ही विचार वास्तुशास्त्र में प्रमुखतया किया गया है। धार्मिक क्रियाएँ भी किस दिशा में मुख करके सम्पन्न की जायँ, इसका भी निर्देश जैन-अजैन ग्रन्थों में मिलता है। जैन ग्रन्थों में बतलाया गया है कि श्रावकों को पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके जिनपूजा, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएँ करनी चाहिए। इस विषय में भगवती-आराधना की निम्नलिखित गाथाएँ द्रष्टव्य हैं-

पाचीणोदीचिमुहो चेदियहुत्तो व कुणदि एगंते।

आलोयणपत्तीयं काउस्सगं अणाबाधे ॥ ५५२ ॥

अनुवाद- "गुरु का उपदेश प्राप्त कर समाधिमरण के लिए कृतनिश्चय क्षपक पूर्व, उत्तर या जिनबिम्ब की ओर मुख करके बाधारहित एकान्त स्थान में आलोचना के लिए कायोत्सर्ग करता है।"

पाचीणोदीचिमुहो आयदणमुहो व सुहणिसण्णो हु।

आलोयणं पडिच्छदि एक्को एक्कस्स विरहम्मि ॥ ५६३ ॥

अनुवाद- "आचार्य भी पूर्व, उत्तर अथवा जिनायतन की ओर अभिमुख हो, सुखपूर्वक बैठकर एकान्त में अकेले ही केवल एक क्षपक की आलोचना सुनते हैं।"

पुढवीसिलामओ वा फलयमओ तणमओ य संथारो।

होदि समाधिणिमित्तं उत्तरसिर अह व पुव्वसिदो ॥ ६३९ ॥

अनुवाद- "समाधि के लिए क्षपक का संस्तर पृथ्वीमय, शिलामय, फलकमय (काष्ठनिर्मित) अथवा तृणमय होता है। उसका सिर उत्तर या पूर्व की ओर होना चाहिए।"

उन्नति का प्रतीक होने एवं तीर्थकर-साहचर्य के कारण उक्त दिशाएँ शुभ

क्षपक एवं आचार्य का मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर क्यों होना चाहिए, यह प्रश्न उठाते हुए भगवती-आराधना की विजयोदया टीका में इस प्रकार समाधान किया गया है-

"तिमिरापसारणपरस्य धर्मरश्मेरुदयदिगिति उदयार्थी तद्दुदस्मत्कार्याम्युदयो यथा स्यादिति लोकः प्राङ्मुखो भवति। सूरस्तु कोऽभिप्रायो येन प्राङ्मुखो भवति? प्रारब्धपरानुग्रहणकार्यसिद्धेरङ्गं तद्दिगभिमुखता तिथिवारा-दिवदिति। उदङ्मुखता तु स्वयम्प्रभादितीर्थकृतो विदेहस्थान् चेतसि कृत्वा तदभिमुखतया कार्यसिद्धिरिति। चैत्यायतनाभिमुखताऽपि शुभपरिणामतया कार्यसिद्धेरङ्गं।" (विजयोदयाटीका/भगवती-आराधना/गाथा ५६२)।

अनुवाद- 'प्रश्न : पूर्व दिशा अन्धकार को दूर करने में तत्पर सूर्य के उदय की दिशा है, अतः अपने उदय (उन्नति) का इच्छुक मनुष्य पूर्वदिशा के (अन्धकार से मुक्त एवं प्रकाश से जगमगाने के) समान मेरे भी कार्य का अभ्युदय (सिद्धि) हो, इस भावना से पूर्व की ओर मुख करता है। आचार्य किस अभिप्राय से पूर्व की ओर मुख करके बैठते हैं? समाधान : शुभ तिथि, शुभ वार आदि के समान पूर्व की ओर मुख करना प्रारंभ किये गये, क्षपकानुग्रहरूप कार्य की सिद्धि का अंग है, इसलिए आचार्य पूर्वाभिमुख बैठते हैं। तथा उत्तरदिशा में विदेहक्षेत्र है, जहाँ स्वयम्प्रभ आदि तीर्थकर स्थित हैं। उन्हें चित्त में स्थापित कर उनके अभिमुख होने से कार्य की सिद्धि होती है, इस अभिप्राय से आचार्य उत्तर दिशा की ओर मुख करते हैं। जिनालय की ओर मुख करना भी शुभपरिणामरूप होने से कार्यसिद्धि का अंग है।'

यही समाधान विजयोदयाटीकाकार अपराजित सूरि ने क्षपक के संस्तर का सिर पूर्व या उत्तर दिशा में क्यों होना चाहिए, इस प्रश्न के प्रसंग में किया है-

'पूर्वोत्तमाङ्ग उत्तरोत्तमाङ्गो वा संस्तरः कार्यः। प्राची दिगभ्युदयिकेषु कार्येषु प्रशस्ता। अथवोत्तरादिक्

स्वयम्प्रभाद्युत्तरदिग्गततीर्थकरभक्त्युद्देशेन।' (विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गाथा ६३९)।

अनुवाद- "क्षपक के संस्तर का सिर पूर्व या उत्तर दिशा में करना चाहिए, क्योंकि लोक में मांगलिक कार्यों के सम्पादन में पूर्वदिशा प्रशस्त मानी जाती है। अथवा उत्तरदिशा (विदेहक्षेत्र) में विद्यमान तीर्थकरों के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के उद्देश्य से उत्तरदिशा शुभ मानी जाती है।"

इन वचनों से स्पष्ट होता है कि पूर्व और उत्तर दिशाएँ अपने आप में शुभ नहीं हैं, अपितु पूर्व दिशा सूर्योदय के साहचर्य से अभ्युदय (उन्नति) का प्रतीक (दृष्टान्त) बन गयी है। इस कारण लोग 'उसके समान हमारा भी अभ्युदय हो,' इस कामना से उसकी ओर मुख करके अपने कार्य का आरंभ करने लगे। इसी बजह से वह शुभ मानी जाने लगी अर्थात् उस पर शुभत्व का आरोप कर दिया गया। क्षपक की दृष्टि से पूर्व की ओर मुख करके कायोत्सर्ग करने का यही प्रयोजन भगवती-आराधना की उपर्युक्त विजयोदयाटीका (गाथा ५६२) में बताया गया है।

और आचार्य की दृष्टि से पूर्व की ओर मुख किये जाने का उपर्युक्त कारण अथवा अन्य कोई कारण न बतलाकर मात्र यह कह दिया गया है कि यह कार्यसिद्धि का अंग है। किन्तु उत्तर की ओर मुख किये जाने का प्रयोजन यह बतलाया गया है कि उत्तर दिशा में विदेहक्षेत्र में जो स्वयंप्रभ आदि तीर्थकर हैं, उनकी ओर भक्तिपूर्वक मुख करने से कार्यसिद्धि होती है। इस प्रकार उत्तरदिशा को स्वयंप्रभ आदि तीर्थकरों के साहचर्य से शुभ मान लिया गया है, अर्थात् उस पर शुभत्व का आरोप किया गया है। कार्यसिद्धि का हेतु तो उत्तरदिशा में स्थित तीर्थकरों की ओर भक्तिपूर्वक मुख करना ही बतलाया गया है, उत्तर दिशा में मुख करना नहीं।

जिस प्रकार उत्तरदिशा अपने आप में शुभ नहीं बतलायी गयी, उसी प्रकार पूर्वदिशा भी अपने आप में शुभ नहीं हो सकती। अभ्युदय का प्रतीक या दृष्टान्त होने के अतिरिक्त पूर्वदिशा के शुभत्व का कारण उदयकालीन सूर्यबिम्ब में स्थित जिनबिम्ब का साहचर्य ही हो सकता है। जम्बूद्वीप में कर्कटसंक्रान्ति के दिन सूर्य का दक्षिणायन प्रारंभ होने पर निषधपर्वत के ऊपर प्रथममार्ग में सूर्य का प्रथमोदय होने पर अयोध्यानगरी में स्थित भरतचक्रवर्ती सूर्यबिम्ब में स्थित अकृत्रिम जिनबिम्ब को प्रत्यक्ष देखकर उन्हें पुष्पांजलि अर्पित करते थे। (ब्रह्मदेवटीका / बृहद्द्रव्यसंग्रह / गा.३५ पृ. १२२)। इससे सिद्ध होता है कि पूर्वदिशा के शुभत्व का कारण सूर्यबिम्ब में स्थित अकृत्रिम जिनबिम्ब का साहचर्य ही है। इस प्रकार पूर्व दिशा का भी शुभत्व आरोपित है, स्वाभाविक नहीं। **शुभपरिणाम ही कार्यसिद्धि का अंग**

भगवती-आराधना गाथा ५६२ की पूर्वोद्धृत विजयोदयाटीका में कहा गया है कि जिनायतन की ओर मुख करना भी शुभ परिणाम का हेतु होने से कार्यसिद्धि का अंग है। इससे सिद्ध है कि दिशाओं का महत्व नहीं है, अपितु जिनबिम्ब, जिनायतन और साक्षात् तीर्थकरों का महत्व है। वे जिस दिशा में विद्यमान होंगे, उसी दिशा में मुख करके कार्य प्रारंभ करने से शुभपरिणाम होंगे और उनसे कार्यसिद्धि होगी। इस तरह सभी दिशाओं और विदिशाओं में शुभत्व-आरोपण के हेतु विद्यमान हैं, क्योंकि उन सभी में जो ज्योतिष्क, वैमानिक, भवनवासी और व्यन्तर देवों के विमान या आवास हैं, वे जिनचैत्यालयों और जिनबिम्बों से युक्त हैं।

दिशाओं अर्थात् आकाश द्रव्य का उपकार केवल अवगाहनहेतुत्व है

सूर्य के उदयादि की अपेक्षा आकाश द्रव्य के जो विभिन्न भाग कल्पित किये जाते हैं, उनका नाम दिशा है, जैसा कि पूज्यपाद स्वामी ने कहा है-

'दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेशपङ्क्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः।'
(सर्वार्थसिद्धि ५/३/पृ. २०४)

अनुवाद- "दिशा का भी आकाश में अन्तर्भाव है, क्योंकि सूर्य के उदयादि की अपेक्षा आकाश की प्रदेशपङ्क्तियों में 'यहाँ से यह दिशा है', इस प्रकार के व्यवहार की उपपत्ति होती है।"

अभिप्राय यह कि आकाशद्रव्य ही दिशाओं के नाम से अभिहित होता है। और धर्म, अधर्म, आकाश

और काल ये चार द्रव्य सदा शुद्ध रहते हैं, इनका किसी अन्य द्रव्य के साथ संश्लेष या संयोग नहीं होता। अतः इनका कभी भी शुभ या अशुभ रूप से विभावपरिणमन नहीं होता। इनका सदा स्वभावरूप से परिणमन होता है। और आकाश द्रव्य का स्वभाव है सभी द्रव्यों को स्थान देना- 'आकाशस्यावगाहः।' (तत्त्वार्थसूत्र ५/८)। इसके अतिरिक्त उसका और कोई स्वभाव नहीं है। जैसे किसी जीव के कार्य को सफल या विफल करना, यह स्वभाव धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में से किसी भी द्रव्य में नहीं बतलाया गया है। अतः दिशाओं अर्थात् आकाश द्रव्य का परिणमन केवल स्वयं के और अन्य द्रव्यों के लिए स्थान देने के रूप में ही हो सकता है, जीवों के कार्यों को सिद्ध या असिद्ध करने के रूप में नहीं। इसलिए दिशाओं में स्वभाव से न तो शुभत्व घटित होता है, न अशुभत्व। इसी कारण भगवती-आराधना की विजयोदयाटीका के कर्ता श्री अपराजित सूरि ने उत्तर दिशा को विदेहस्थ तीर्थकरों के सान्निध्य के कारण शुभ बतलाया है और पूर्वदिशा को सूर्योदय के सान्निध्य के कारण अम्युदय का प्रतीक होने की अपेक्षा अथवा सूर्यबिम्बस्थ अकृत्रिम जिनचैत्यालयों के सान्निध्य की अपेक्षा शुभ निरूपित किया है। इस तरह उक्त दिशाओं में शुभत्व आरोपित है, स्वाभाविक नहीं।

योगसार में जोइन्दुदेव कहते हैं-

जेहउ सुद्ध अयासु जिउ तेहउ अप्पा वुत्तु।

आयासु वि जडु जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु॥ ५९॥

अनुवाद- "हे जीव! जैसे आकाश शुद्ध है, वैसे ही आत्मा भी शुद्ध कही गयी है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि आकाश जड़ है और आत्मा चैतन्य-लक्षण से युक्त है।"

इस दोहे में आकाशद्रव्य को आत्मद्रव्य के समान शुद्ध बतलाया गया है। और कालद्रव्य के विषय में वर्तमान आचार्य श्री विद्यासागर जी ने कहा है कि "काल से हमारा सम्बन्ध है ही नहीं। शुद्धद्रव्य से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह प्रभावक नहीं हो सकता, वह उदासीन है, जैसे सिद्धपरमेष्ठी।" (श्रुताराधना/पृष्ठ ११)। आचार्य श्री विद्यासागर जी आगे कहते हैं- "किन्तु काल को उन्होंने (सर्वार्थसिद्धिकार आदि आचार्यों ने) कभी भी सक्रिय प्रभावक के रूप में स्वीकार नहीं किया और चार द्रव्यों को शुद्ध कहा है। इसलिए कहा है कि ये चार द्रव्य हमेशा शुद्ध रहते हैं, पक्षपात नहीं करते, यदि पक्षपात करेंगे तो बहुत बड़ा घोटाला हो जायेगा।" (श्रुताराधना/पृ.१७)।

आचार्य श्री के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि कालद्रव्य के समान आकाशद्रव्य (दिशाएँ) भी अप्रभावक अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी के समान उदासीन अत एव पक्षपातरहित है। पक्षपातरहित होने का तात्पर्य यह है कि आकाशद्रव्य का कोई भी भाग (दिशा) न तो किसी जीव के लिए शुभ होता है और न किसी जीव के लिए अशुभ। वह इन शुभाशुभ भेदों से परे है।

यदि दिशाओं में सर्वद्रव्य-अवगाहनहेतुत्व के अतिरिक्त जीवों के शुभ-अशुभ करने की या उनके कार्यों को सिद्ध-असिद्ध करने की स्वाभाविक शक्ति मानी जाये, तो यह जिनागमबाह्य वचन होने के कारण आगमविरुद्ध होगा और आकाश द्रव्य के रूप में जीवों के सुख दुःख, सिद्धि-असिद्धि आदि के नियामक अर्थात् जीवों के भाग्यविधायक एक अदृश्य, अमूर्त, अपरिभाषित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना होगा।

शुभाशुभपरिणामोत्पादक द्रव्य ही शुभाशुभ द्रव्य

जीव को सुखदुःख की प्राप्ति और उसके कार्य की सिद्धि-असिद्धि उसके साता-असातावेदनीय कर्म के बन्ध-उदय तथा अन्तरायकर्म के बन्ध, उदय एवं क्षयोपशम से होती है। और इन कर्मों का बन्ध, उदय एवं क्षयोपशम जीव के शुभाशुभ परिणामों से होता है। योग्य परद्रव्य केवल जीव के शुभाशुभ परिणामों की उत्पत्ति में निमित्त बनता है। जैसे जिनबिम्ब, जिनालय, पंचपरमेष्ठी आदि के सान्निध्य एवं उनकी श्रद्धाभक्ति, दर्शन-पूजन आदि के निमित्त से जीव में दया, निर्लोभ, निरभिमानता, सरलता आदि शुभपरिणामों की उत्पत्ति

होती है और कुदेवबिम्ब, कुदेवायतन, कुगुरु आदि के सान्निध्य एवं आराधना से अदया, लोभ, अभिमान, कुटिलता आदि अशुभ परिणामों का उदय होता है। इन शुभाशुभ परिणामों से जीव को साता-असातावेदनीय कर्म का बन्ध और उदय तथा अन्तरायकर्म का बन्ध, उदय एवं क्षयोपशम अपने-आप होता है, जिससे जीव को सुख दुःख की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि या असिद्धि स्वतः होती है। इस प्रकार योग्य परद्रव्य केवल जीव के शुभाशुभ परिणामों की उत्पत्ति में निमित्त बन सकता है। केवल इस कारण शुभपरिणामों की उत्पत्ति में निमित्तभूत द्रव्य शुभ द्रव्य कहलाता है और अशुभपरिणामों की उत्पत्ति का हेतुभूत द्रव्य अशुभद्रव्य संज्ञा पाता है। जिनबिम्ब, जिनालय आदि शुभपरिणामों की उत्पत्ति में निमित्त होते हैं, अतः ये शुभद्रव्य हैं। इसके विपरीत कुदेव, कुदेवायतन आदि द्रव्य अशुभ परिणामों की उत्पत्ति में निमित्त होने से अशुभद्रव्य हैं।

किन्तु आकाश द्रव्य का कोई भी भाग (दिशा) उसकी ओर मुख करके स्थित होनेवाले जीव में दया, निर्लोभ आदि शुभपरिणामों की तथा अदया, लोभ आदि अशुभपरिणामों की उत्पत्ति में निमित्त नहीं होता। यदि ऐसा हो, तो आकाशद्रव्य जिनबिम्बादि एवं कुदेवबिम्बादि के गुणों से युक्त सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त अमूर्त होने के कारण मूर्त जिनबिम्बादि की तरह वह जीव के शुभाशुभपरिणामों की उत्पत्ति में मनोवैज्ञानिक हेतु बन भी नहीं सकता। अतः जीव को सुखदुःख, सिद्धि-असिद्धि प्राप्त करानेवाले शुभाशुभ कर्मों के बन्ध, उदय एवं क्षयोपशम में जो शुभाशुभ परिणाम निमित्त होते हैं, उनकी उत्पत्ति में सहायक न होने से आकाश द्रव्य का कोई भी भाग (दिशा) शुभ या अशुभ द्रव्य नहीं है।

जैसा कि भगवती-आराधना (गाथा ५६२) की पूर्वोद्धृत टीका से प्रकट है, विदेहस्थित तीर्थकरों के सान्निध्य से तीर्थकरों के शुभत्व का उत्तरदिशा पर आरोप किया जाता है और सूर्योदय के सान्निध्य से पूर्वदिशा, जो अभ्युदय का प्रतीक बन जाती है, उसके कारण अथवा सूर्यविमान में विराजमान जिनबिम्ब के साहचर्य से जिनबिम्ब का शुभत्व पूर्वदिशा पर आरोपित किया जाता है। अतः आकाश द्रव्य के पूर्व और उत्तर भाग अपने आप में शुभ (जीवों की कार्यसिद्धि के हेतु या शुभफलदायक) नहीं हैं, अपितु उन्हें उपचार से शुभ कहा जाता है, जैसे राजा के साथ रहने से राजा के मंत्री आदि को भी लोक में राजा कह दिया जाता है।

वास्तुशास्त्रविषयक महत्त्वपूर्ण संकेत

भगवती-आराधनाकार आचार्य वट्टकेर और विजयोदयाटीकाकार आचार्य अपराजित सूरि ने पूर्वोक्त गाथाओं और उनकी टीका में यह महत्त्वपूर्ण संकेत दिया है कि मांगलिक कार्यों की सिद्धि में वास्तु की दिशाओं का महत्त्व नहीं है, अपितु उसमें रहनेवाले मनुष्य के मुख की दिशा का महत्त्व है। अर्थात् वास्तु कैसा भी हो, वास्तुशास्त्रानुसार निर्मित अथवा उसके प्रतिकूल निर्मित गृह में रहनेवाला मनुष्य यदि जिनबिम्ब, जिनालय या उपस्थित तीर्थकर की दिशा में मुख करके कोई मांगलिक कार्य करता है, तो तत्काल उत्पन्न हुए शुभपरिणामों के प्रभाव से उसकी सिद्धि होती है।

नम्र निवेदन

इस लेख में प्रस्तुत किये गये तथ्य यदि विज्ञ पाठकों की धारणाओं के विरुद्ध हों, तो कृपया मुझ पर कुपित या रुष्ट न हों, और जिन आगमप्रमाणों के आधार पर उक्त तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हें असत्य सिद्ध करनेवाले अन्य कोई आगमप्रमाण विज्ञ पाठकों की दृष्टि में हों, तो उनसे मुझे अवगत कराने की कृपा करें। आगमसम्मत युक्तिमद् वचन क्षमायाचनापूर्वक स्वीकार करने में, मैं विलम्ब नहीं करूँगा। अपनी बात कहना और दूसरे की बात को धैर्यपूर्वक सुनना और गुनना ही तत्त्वबोध का समीचीन मार्ग है, जैसा कि ऋषियों ने कहा है- 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।'

रतनचन्द्र जैन

इस प्रवचन का प्रथम अंश आप 'जिनभाषित' के गतांक में पढ़ चुके हैं। यहाँ द्वितीय अंश प्रस्तुत है।

आयु कर्म है, आयु काल नहीं है

अब छटा नहीं, सातवाँ नहीं, आठवाँ यह यम का दूत काल आ गया है। गत ५० वर्षों से यह हम सुनते आ रहे हैं। जैसा करेगा वैसा भरेगा। किसी के यहाँ ईश्वर, किसी के यहाँ महेश्वर, किसी के यहाँ यह, किसी के यहाँ वह और अब जैनों के यहाँ काल आ गया। अब काल आ गया, समझ लेना। काल को मृत्यु का रूप दिया गया है। काल का अर्थ शून्य है, लिख लो अच्छे ढंग से, काल आ गया तो जीवन समाप्त। 'कालो गदो'। दूसरा जीवन प्रारंभ होगा, उसको काल नहीं कहेंगे। हमने क्या कहा, काल को जीवन नहीं कहा। 'कालो गदो' आयु जब तक है, जीवन तब तक है। ज्या वयोहाना (परस्मैपदी) कातंत्र रूपमाला में वय की हानि का नाम जीवन है। हानि हो रही है। अब जीवन नहीं, किसकी हानि हो रही है? आयु की, आयु कर्म है। आयु काल नहीं है। बड़े-बड़े विद्वान इसको काल मानते हैं। उनको यह पता नहीं कि उपचार क्या है और परमार्थ क्या है? काल से हमारा सम्बन्ध है ही नहीं। शुद्ध द्रव्य से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह प्रभावक नहीं हो सकता, वह उदासीन है जैसे सिद्ध परमेष्ठी। सिद्ध परमेष्ठी से भी वह काल और अतीत में है। वह अशुद्ध था ही नहीं। क्योंकि सिद्ध परमेष्ठी कथञ्चित् अशुद्ध थे। अब शुद्ध हुए हैं। लेकिन काल द्रव्य हमेशा शुद्ध था। काल तो किसी की पकड़ में नहीं आता है, वह परिणमनशील है। उसके निमित्त से द्रव्यों में परिणमन अवश्य होता है। पकड़-पकड़ करके परिणमन कराने का स्वभाव काल द्रव्य का नहीं है।

जो कारण प्रेरक नहीं, जो कारण प्रभावक नहीं, जो कारण साधक नहीं, तो स्वयं तो कुछ न करना और उस काल के द्वारा पुरुषार्थ कराना कहाँ तक उपयुक्त है? यह चिन्तनीय विषय है।

हम किसके सामने क्या कहें, इसलिए बालकों को समझाने के लिए काल की बात बाद में करेंगे। उमा स्वामी

महाराज ने उसको 'कालश्च' (त. सू. ५ / ३९) ऐसा कहा। इस पर कई व्यक्ति कहते हैं 'कालश्च इत्येके' (तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ५/३८)। जिनको काल नहीं मानना था, वे भी काल के ऊपर टूट पड़े। कुछ आचार्य कहते हैं कि काल भी होता है। छह कारकों में काल को नहीं रखा। काल नहीं होता। नहीं ही होता। काल ही प्रत्येक कार्य का नियन्ता नहीं होता है।

कालद्रव्य-विज्ञान की दृष्टि में

ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। आज जो भी विज्ञान का विकास हुआ है मैं समझता हूँ कि काल को उन्होंने कुछ माना ही नहीं। यदि वे मानते तो निश्चित रूप से गिनती करते और नियन्ता के रूप में स्वीकार करते। इसलिए विश्व में सबसे ज्यादा विकास विज्ञान का हो गया और आप हर बात में काल को ले बैठते हैं।

'टाइम इज मनी' किनके लिए? जो कह रहे हैं उनके लिए? ध्यान रखो। मंत्री कभी नहीं सोचेगा- 'टाइम इज मनी'। सब काम करते चले जा रहे हैं। घड़ी आपके हाथ में बँधी, ठीक है। लेकिन सब टाइम से काम करते हैं? बेटाइम तो आप ही करते हैं, क्योंकि घड़ी आपके हाथ में बँध गई है। शुद्ध द्रव्य आपके हाथ में है। अब तो चाबी दी तो चली, नहीं तो, नहीं चली। आइंस्टीन ने यह कहा कि काल सापेक्ष है और जब तीव्र वेग हो जाता है द्रव्य का, ऑब्जेक्ट का, या जो भी मेटर है उसका, उस समय उसमें काल की कोई आवश्यकता नहीं रहती। ऐसा उन्होंने सिद्ध कर दिया। लेकिन जैन दर्शन कहता है कि यहाँ पर भी काल द्रव्य काम कर रहा है। क्योंकि परिणमन के लिए आवश्यक है। लेकिन परिणमन में निमित्त होने के लिए हमने ऐसे द्रव्य को रखा है जिसके अविभागी प्रतिच्छेद का आविष्कार इस गति तक पहुँचा दिया है कि उसका चालू करते ही पहले पाँच मिनट लगते थे तब कार्य होता था। अब उस कार्य को करने में पाँच सैकण्ड भी नहीं

लगते। इसलिए काल की कोई आवश्यकता नहीं। इस सैकण्ड के भी आइंस्टीन ने करोड़ों भाग किये हैं। यह बात तो समझ में आ ही नहीं सकती।

आइंस्टीन ने उसका निगेटिव प्वाइंट लेकर प्रवर्तन करा दिया। एक सैकण्ड के असंख्यात समय होते हैं। यह बात जैन दर्शन ने आज से बहुत पहले कह दी थी। काल के बिना कार्य नहीं होता, ऐसा नहीं है, हाँ, काल के बिना कार्य हो नहीं सकता। लेकिन काल के द्वारा कार्य होता है, ऐसा भी नहीं है। यह ध्यान रखो, तो काल को निकाल दो। 'धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं' धर्म से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'धर्मेण एव' कहा है 'कालेन एव' ऐसा नहीं कहा। 'कालेन एव' काल से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा लिख देते। छन्द भी नहीं टूटता, काम भी बन जाता। लेकिन नहीं लिखा। इसलिए सम्बोधन में 'हे धर्म! मां पालय', हे धर्म! मेरी रक्षा करो, ऐसा कहा है।

'हे काल! मां पालय', 'हे काल! मेरी रक्षा करो,' ऐसा नहीं कहा। हे काल! मेरी रक्षा करो, ऐसी जोड़ दो एक पंक्ति। नहीं, धर्म की भक्ति करो, तो धर्म रक्षा करेगा।

अब धर्म कौन से द्रव्य में मिलेगा? प्रत्येक द्रव्य में अपने-अपने धर्म मिलेंगे। लेकिन वीतराग धर्म अथवा दया धर्म कहाँ मिलेगा? दया धर्म मिलेगा तो मनुष्यों में मिलेगा, तिर्यज्ज्वों में मिलेगा, जीव में मिलेगा। इसलिए जहाँ दया धर्म मिलेगा, तो उसे पूज्यता की दृष्टि से देखते हैं। मनुष्यों में भी दया धर्म मुनि-अवस्था में मिलेगा। इस ढंग से यदि देखते हैं, तो उस दया की शरण में जाओ। वह मूल है। मूल को छोड़ोगे, तो बड़ी भूल होगी।

काल नियन्ता नहीं

आज का युग बड़ी भूल कर रहा है। दया के पक्ष को छोड़कर, काल के पक्ष को लेकर चल रहा है। ऐसा करके वह महान् पुरुषार्थ को धक्का दे रहा है, पीछे धकेल रहा है। व्यक्ति की बुद्धि को मोड़ रहा है। भ्रम फैला रहा है। काल तो सामान्य रूप से छहों कालों में बना रहता है। अन्तिम बात कह करके मैं अपनी बात समाप्त कर देना चाहता हूँ, क्योंकि समय हो रहा है, समय के अनुसार सब कार्य होने चाहिए।

मान लो कोई व्यापार करता है, तो व्यापार में आप देखते हैं कि लेन-देन चलता है और जब लेन-देन चलता रहता है, तो ऐसी स्थिति में संग्रह भी हो सकता है और

संग्रह के अभाव में वह मुनि भी बन सकता है। अब मान लीजिये थोड़ा संग्रह हो गया, तो अब मैं यह बताना चाह रहा हूँ कि इसमें काल कैसे प्रमुख बन गया? तो अब आपके धन की दो क्वालिटी बन जाती हैं। एक क्वालिटी- एक नम्बर और दूसरी क्वालिटी- दो नम्बर, तीसरा नम्बर तो नहीं आयेगा? अब देखो जो धन है, उसके ऊपर तो लिखा नहीं है कि यह नम्बर एक का और यह दो नम्बर का है। बात समझ में आ रही है न? हाँ, यह तो हमारी बुद्धि के द्वारा टाइटल दिया जा रहा है, न कि अवसर्पिणी काल के कारण धन का संग्रह हो रहा है। उस धन के टाइटल में अवसर्पिणी काल कारण है, ऐसा नहीं लिखा है।

“श्रोतुः कलुषाऽऽशयो वचनाऽऽशयो वा प्रवक्तुः” धनसंग्रह में श्रोता का कलुषाशय है, तभी तो आपने इसको एक नम्बर घोषित किया और उसको दो नम्बर घोषित किया। दो को एक नम्बर बनाने की भी प्रक्रिया है।

इसमें काल कारण है या आपकी बुद्धि कारण है। थोड़ा सोचिये और दिमाग में से काल द्रव्य को निकाल दीजिये। लेकिन इस जिनवाणी पर विश्वास रखिये। इसी में कहा है कि जो इस काल को पकड़ कर बैठा है, वह अनेक प्रकार के दुष्कार्य, दुःसाहस करता है एवं अनेक प्रकार के पंथ चलाये जा रहे हैं, तो इसमें कोई अन्य कारण हो सकता है, काल नहीं।

थर्मामीटर केवल मापक है, वह स्वयं ज्वरग्रस्त नहीं। चिकित्सा ज्वरग्रस्त की होती है, उस ज्वरमाप यंत्र की चिकित्सा नहीं होती। इसलिए युग की चिकित्सा हमें करनी चाहिए, क्योंकि युग में रहना है। हम अपने आशय और बुद्धि को अच्छा बनाना चाहते हैं। किसी भी निमित्त को लेकर यदि हम युग को परिवर्तित कर देते हैं, तो कितना बड़ा कार्य होगा। यह ध्यान रखना कि वक्ता उपदेश देकर जितने व्यक्तियों का कल्याण कर सकता है, उतना वह एकबार में अकल्याण भी कर सकता है। एक का अकल्याण नहीं, वह अनेक का अकल्याण कर सकता है, उपदेश के माध्यम से, क्योंकि उसके पास दक्षता है।

आइंस्टीन ने कहा कि काल से नहीं, काल-निरपेक्ष भी कार्य हो सकता है। जैनदर्शन कहता है कि काल-निरपेक्ष कोई कार्य नहीं होता है। लेकिन नियन्ता के रूप में काल नहीं है। यह तो द्रव्य में स्वयं ने ऐसी ऊर्जा उत्पन्न कर दी कि जिसके द्वारा उसका वेग बढ़ गया।

‘विज्’ धातु से वेग बनता है, ध्यान रखो। वेग शब्द कहाँ से प्रारंभ होता है, उपसर्ग लगने से अनेक-अनेक शब्दों का उद्घाटन होता है, जैसे- ‘सम्’ उपसर्गपूर्वक ‘संवेग’ बनता है, ‘उद्’ उपसर्ग लगने से उद्वेग शब्द बन जाता है। ‘निर्’ उपसर्ग लगने से निर्वेग शब्द बन जाता है। ‘आ’ उपसर्ग लगने से आवेग शब्द बन जाता है। काल की महिमा गानेवालो! अब काल की महिमा गाना छोड़ दो और संवेग, निर्वेग की ओर आ जाओ। आइंस्टीन के सामने यह रहस्य प्रकट हुआ, निश्चित रूप से वे खोजी तो थे ही। उन्होंने यहाँ तक तो खोज कर दी। किन्तु आप लोग आज भी काल पर ही अटक रहे हो। आइंस्टीन नहीं अटके और उन्होंने कहा, इस कार्य में जितनी गति आयेगी, उतना ही हम काल को गौण कर सकते हैं। गौण करना अलग वस्तु है।

‘समये मन्दगत्या परमाणुः प्रदेशात् प्रदेशान्तरं गच्छति।’ जितने समय में मंदगति से पुद्गल परमाणु आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गमन करता है, वह समय कहलाता है। अर्थात् आकाश के एक प्रदेश से पुद्गल परमाणु मन्दगति से आकाश के दूसरे प्रदेश तक चलता है, तो एक समय लगता है। वही परमाणु ‘आभ्यन्तरपरिणत्या’ अभ्यन्तर परिणति के कारण यदि उत्कर्ष से गमन करता है, तो उसमें एक समय में चौदह राजू गमन करने की क्षमता है, यह क्षमता काल की नहीं है।

सोचिये, समझिये, गौर कीजिये, उपसंहार कर रहा हूँ। काल द्रव्य गौण है, वह मुख्य होता जा रहा है। यह काल का निराकरण नहीं है। ‘न निराकरणं ते’ समन्तभद्र महाराज कहते हैं- हे भगवन्! आपके यहाँ गौणवृत्ति और मुख्यवृत्ति का कभी निराकरण नहीं है। एक को गौण करते हैं, एक को मुख्य करते हैं। जैसे- तराजू का एक पलड़ा ऊपर चला जाता है, एक नीचे रहता है। लेकिन दोनों पलड़े बने रहते हैं। मुख्य और गौण रूप से कार्य करते रहते हैं। आइंस्टीन ने उसको निरपेक्ष कर दिया। जब पुद्गल में भेद रूप से विकास हो गया, तो काल के बिना भी वह तीव्र गति कर सकता है, ऐसा उन्होंने कहा। उनके इस कथन में कमी रह गयी, क्योंकि सूक्ष्म अध्ययन कालसापेक्ष जैनों के यहाँ होता है। उन्हें यह प्वाइंट नहीं मिला आज तक। किसी भी वैज्ञानिक ने काल की डेफिनिशन (परिभाषा) नहीं दी। न ही धर्म द्रव्य की। न

ही अधर्म द्रव्य की। न ही आकाश द्रव्य की। किन्तु जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है, जो सभी द्रव्यों की डेफिनिशन (परिभाषा), गौण, मुख्य, क्रिया, धर्म, गुणवत्ता और प्रभाव इन सबका विवेचन करता है।

ऐसा विवेचन करने वाला धर्म कहीं नहीं है। हम लोगों का सौभाग्य है कि ऐसा धर्म हमें मिला है। काल में स्वकाल, परकाल, निश्चयकाल, व्यवहारकाल का कथन है। ‘व्यवहारकालस्तु हेयः’ व्यवहार काल तो हेय है और ‘स्वकालस्तु उपादेयः’ स्वकाल तो उपादेय है। ‘चतुरा-राधनापरिणतः निश्चयकालस्तु केवलज्ञानस्य साक्षात् कारणम्, तस्मात् व्यवहारकालस्तु हेयः’ इस प्रकार कहा। इस प्रकार से कहने का श्रेय भी जयसेन महाराज जी को जाता है। ऐसे जयसेन महाराज की आराधना करनेवाले आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज थे, क्योंकि जयसेन महाराज आचार्य कुन्दकुन्द महाराज को ही सामने रखना चाहते थे। जयसेन महाराज जी ने पदखण्डना रूप टीकार्ये की हैं। आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने वृद्ध अवस्था में हिन्दी टीकाएँ लिखी हैं। आचार्य ज्ञानसागर जी की ‘श्रुतभक्त्या कृता तट्टीका’ वह हिन्दी टीका जयवन्त हो, जयशील हो, यही भावना है। ‘अहिंसा परमो धर्म’ की जय।

द्वितीय सत्र १४.५.२००७, अपराह्न काल शुद्ध द्रव्य है

प्रातःकालीन सत्र में कुछ चिन्तनबिन्दु आप लोगों के सामने रखे थे। उसमें बताया था कि काल प्रभावक नहीं है। उसको लेकर पंडित जी की जिज्ञासा आयी है। हमने प्रातः उसका स्पष्टीकरण कर दिया था कि काल शुद्ध द्रव्य है एक बात, उसमें न तो भरतखण्ड के कारण और न ऐरावत खण्ड के कारण अशुद्धि आती है। कालाणु ‘निष्क्रियाणि च’ इस सूत्र के माध्यम से चाहे विदेह में हो, चाहे भरत-ऐरावत में हो, कहीं भी हो, चाहे वह नरकों में हो या देव गति में हो, कहीं भी तीन लोक में एक-एक प्रदेश में स्थित है ‘रयणाणं रासी इव’ (द्र. सं. २२) रत्नों की राशि की तरह वे सब शुद्ध हैं। ऐसा आगम में उल्लेख किया गया है।

मुक्ति में हमारे कार्य बाधक हैं, काल नहीं

अब दूसरी बात रही भरत और ऐरावत क्षेत्र में- ‘भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्’ (त.सू.३/२७)। समय माने काल। आचार्यों ने

व्यक्तियों के परिणामों के विषय में इस काल को, जैसे थर्मामीटर टेम्प्रेचर नापने वाला हेतु है, उसी रूप में कहा है। न कि उसमें अपनी गुणवत्ता है। यदि है तो प्रश्न के ऊपर प्रतिप्रश्न उठता है कि पञ्चम काल है, आप लोग हैं, यहाँ पर अभी मुक्ति का द्वार खुला हुआ है, मुक्ति भी खुली है?

प्रश्न उठता है कि मुक्ति में आपके लिए काल बाधक है या आपके कार्य? यदि यहाँ पर काल आपके रोक रहा है, तो यहाँ से कोई भी मुक्त नहीं होना चाहिए। आचार्यों का कहना है कि अपहरण की पद्धति से यदि विदेह क्षेत्र आदि में जन्म लिये मुनि महाराज यहाँ पर आ गये, तो वे महाराज जी यहाँ से भी मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। चूँकि यहाँ का काल उनकी मुक्ति में कारण होगा, इससे स्पष्ट है कि काल किसी भी प्रकार से प्रभावक नहीं है, उपचार से आप कह सकते हो। उसमें यह आरोप आ जाता है। इससे अधिक और कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता है। फिर भी यदि जिज्ञासा हो तो हम उसका समाधान करने के लिए तैयार हैं।

कालद्रव्य निष्क्रिय निमित्त है

तीसरी बात यह है कि काल शुद्ध द्रव्य है। वह निष्क्रिय है। जो पदार्थ निष्क्रिय होता है, वह स्थान से स्थानान्तर नहीं जाता है। वह हठात् किसी प्रकार से काम नहीं कर सकता। अब इतना अवश्य है कि सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों में उपाध्याय परमेष्ठी और आलोक आदि को श्रुतज्ञान की उत्पत्ति में कारण माना गया है तो उसके साथ-साथ उन्होंने कहा है कि 'कारीषोऽग्निः' इसमें भी कर्तृत्व को उन्होंने निमित्त अर्थात् उपचार के रूप में स्वीकार किया है।

अध्यापन के काल में जिस प्रकार उपाध्याय परमेष्ठी

कार्य करते हैं, अध्यापन के कार्य में उसी में संयोग की अपेक्षा से 'कारीषोऽग्निः' यह कहा, कण्डे की अग्नि पढ़ाती है। चूँकि हमारे ज्ञान की उत्पत्ति में अर्थात् अध्यापन कार्य में निमित्त है। 'निमित्तेऽपि' निमित्त में भी कर्तृत्व का व्यवहार होता है। 'निमित्तेऽपि कर्तृत्वव्यवहार इति'। किन्तु काल को उन्होंने कभी सक्रिय प्रभावक के रूप में स्वीकार नहीं किया और चार द्रव्यों को शुद्ध कहा है। इसलिए कहा कि ये चार द्रव्य हमेशा शुद्ध रहते हैं, पक्षपात नहीं करते, यदि पक्षपात करेंगे तो बहुत बड़ा घोटाला हो जायेगा। हाँ, इसलिए बंध भी जहाँ होता है, उसमें भी काल को लेकर जो चिन्तन किया जाता है, वह भी गलत है। चूँकि वहाँ पर भी उसने थर्मामीटर का ही कार्य किया है। जो चार प्रकार का बंध होता है, वह पुद्गल में ही होता है। स्थितिबंध पौद्गलिक है, प्रकृतिबंध पौद्गलिक है, प्रदेशबंध पौद्गलिक है, अनुभागबंध पौद्गलिक है। इन चारों में बंध हो रहा है। काल उसमें कारण बनता है, जैसा कि हमने सुबह बताया था। इसके अलावा कुछ नहीं है।

वहाँ पर आत्मा में बँधते हैं। इस अपेक्षा से कह दो, यह अलग विषय हो जाता है। चारों बंध जो होते हैं, आत्मा के प्रदेशों में होते हैं, लेकिन स्थिति बंध आत्मगत बंध नहीं है। आत्मा में स्थितिबंध पाकर के इसकी फल देने की क्षमता को अनुभाग बंध कहते हैं। इसके बाद वह रह सकता है। लेकिन बंध जो हुआ है वह पौद्गलिक वर्गणाओं का ही बंध है। इसलिए काल को जो बीच में लाया जाता है, वह केवल उसके परिणामन में कारणभूत है। ऐसा जो कहा जाता है, वह उपचार है।

'श्रुताराधना' (पृष्ठ १०-१७) से साभार

क्रमशः ---

आपके पत्र

आपके द्वारा प्रेषित 'जिनभाषित' का फरवरी २००९ अंक मिला। इस अंक में डॉ० शीतलचन्द्र जैन द्वारा लिखित सम्पादकीय 'नवरात्रोत्सव जैन-परम्परा में मान्य नहीं' पढ़ा। डॉ० शीतलचन्द्र जैन ने वैदिकपरम्परा के ग्रन्थों से अनेक सन्दर्भ उल्लिखित करते हुये यह सिद्ध करने का अच्छा प्रयास किया है कि नवरात्र महोत्सव वैदिकपरम्परा से सम्बद्ध है और जैनपरम्परा से उसका कोई लेना-देना नहीं है। जो मुनि, आचार्य और ब्रह्मचारी भैया लोग नवरात्र महोत्सव को न केवल महिमामण्डित करते हैं, अपितु नवरात्र महोत्सव के नाम पर अनेक रागी-द्वेषी देवी-देवताओं का पूजन-अर्चन करते करते हैं, उन्हें यह सम्पादकीय सद्बुद्धि प्रदान करेगा, ऐसा विश्वास है।

डॉ० कमलेश कुमार जैन (आचार्य एवं अध्यक्ष)

जैन-बौद्धदर्शन विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

नग्नता : पारदर्शिता

मुनि श्री क्षमासागर जी

दिगम्बर साधु को लेकर लोगों में भ्रान्तियाँ हैं। लोग सोचते हैं कि समाज में कोई और तो नग्न नहीं रहता, तो फिर ये क्यों? ऐसे लोगों को कम से कम इतना विचार करना चाहिए कि आखिर क्या इस आदमी के नग्न होने का क्या कारण है? क्या इसके पास वस्त्र नहीं है या बेघर है, विक्षिप्त है- आखिर क्या कारण है? वे जब विचार करेंगे तो जानेंगे नग्नता मजबूरी नहीं है, बल्कि एक समृद्ध जीवन दर्शन है। स्वेच्छा से, ज्ञानपूर्वक इन्द्रियविजय की सूचना है। नग्नता-दिगम्बर है, एक जीवनदर्शन है, मुक्ति की ओर ले जानेवाली है। दिगम्बर अपरिग्रह से शुरू होता है, यह रागद्वेष के परिहार से शुरू होता है। वास्तव में इन्द्रियजयी होना ही नग्न होना है। इन्द्रियजयी होना यानि इन्द्रियों का निग्रह करना। यदि सही मायने में कोई वगैर इन्द्रिय के निग्रह किए नग्न होता है, तो वह दिगम्बर नहीं कहलायेगा। जिसने अपने विचारों पर विजय नहीं पाई, वह व्यक्ति अकेले नग्न होकर दिगम्बरत्व को थोड़े ही प्राप्त कर सकता है। दिगम्बर यानि जिसने दिशाओं को ही अपना वस्त्र बना लिया है। ओढ़ना-बिछाना जिसकी दिशायेँ हो गई हैं। जैनागम में दिगम्बरत्व को यथाजातरूप भी लिखा गया है। जैसा जन्मा, जैसा शिशुवत्, निर्विकार और निश्छल जिसका चित्र है- बाहर भीतर, वह दिगम्बर मुनि है। इस तरह की नग्नता, अपरिग्रह का चरम विकास है। अपरिग्रह का विकास, सर्वोत्तम विकास है। नग्न हो जाना यानि इस अवस्था में सारी आसक्तियाँ टूट जाती हैं, यहाँ तक कि शरीर तक की असक्ति टूट जाती है। शरीर के प्रति निर्ममत्व होकर उसका उपयोग केवल साधन के रूप में किया जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि शरीर से कोई द्वेष है।

नग्नता की लम्बी परम्परा है। वेदों, उपनिषदों में इसके बारे में लिखा गया है। 'परमहंस' और 'जाबाल' में भी इसके बारे में आया है। परमहंस उपनिषद् के एक अंश में कहा गया है- आत्मा के अन्वेषण के लिए हे बाह्यण! तुम्हें इतना तो करना ही पड़ेगा यानि यथाजात होना होगा। यथाजात निःसंदेह नग्नता का पर्याय शब्द है। यथाजात यानि तन-मन से नग्न होना यानि अत्यंत स्वाभाविक होना है।

नग्नता स्वाभाविकता है, प्राकृतिक है। एक दिगम्बर मुनि के साथ नग्नता सहज व स्वाभाविक है, ऊपर से थोपी

हुई नहीं है।

मुगलों के जमाने में कहते हैं कि अबुल कासिम गिलानी और सरमद इन दोनों ने नग्नता को अंगीकार किया था, तब औरंगजेब ने उन दोनों से कहा कि आप वस्त्र पहन लीजिये। तब सरमद ने उससे कहा, "जिसने तुझे बादशाहत का ताज पहनाया, उसी ने हमें यह लिबास भी दिया है। खुदा ने जिस किसी में भी एब पाया, तो उसे वस्त्र पहिनाये और जिसमें कोई एब नहीं पाया उसे नग्नता का लिबास दे दिया।"

वहीं दूसरी और सामान्य नग्नता अभद्र दिखाई देती है, लेकिन साधु की नग्नता अभद्र नहीं दिखती है। यहाँ तक की वस्त्र पहने हुए व्यक्ति भी अपने आँख के इशारे से किसी के मन को विकृत दूषित कर सकता है, लेकिन निर्वस्त्र अपनी सौम्य मुद्रा द्वारा दूसरों को विरक्त होने का संदेश देता है। दिगम्बर मुनि की नग्नता आईना है अपने आपको देखने का, स्वयं को कसौटी पर डालने का, कि इस तरह का भी अर्थात् दिगम्बर बनना एक निर्मल आरसी बनने जैसा है। दिगम्बर मुनि दर्पण तब बन जाता है, जब उसे कोई देखे तो उसका 'दर्प' ओले की तरह गल जाए। और जब कोई यह दर्पण देखे और फिर भी उसमें कोई 'दर्प' अथवा 'कन्दर्प' शेष रह जाए, तो भारी गड़बड़ है। 'कन्दर्प' यही प्रतीति देता है कि विकार कहीं बचे हुए हैं, असल में दर्पण में देखने की योग्यता भी चाहिए।

नग्नता और संयम का अटूट बंध है। संयम यानि आत्मानुशासन! वस्तुतः जिसने इन्द्रिय और मन को निरन्तर वशीभूत किया है या इन्हें वश में करने के लिए अनवरत उत्सुक रहा है वही नग्न हुआ है या हो सकता है। संयम को यदि माइनस कर दें, तो नग्नता अश्लीलता बन जाएगी और यदि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्लस कर दें, तो नग्नता मोक्ष की ओर ले जाएगी। नग्नता के साथ वीतरागता का जुड़ना मानवता को धन्य करता है। जैनमुनि में नग्नता के साथ वीतरागता का मणि-कांचन योग होता है। नग्नता का अपना सौन्दर्य होता है। और इस सौन्दर्य को देखना है, तो गोमटेश बाहुबली में देखना चाहिए।

नग्नता स्वाभाविकता से आवरण हटाने की प्रक्रिया है। यह मौलिकताओं का, आध्यात्मिक मौलिकताओं का अनावरण है।

सम्पूर्ण कर्मसिद्धान्त आवरणमुक्ति पर खड़ा है। ज्ञाना-
वरण दर्शनावरण आदि तमाम आवरण हटाने के अंगोपांग
हैं। ये हमारे ज्ञान को ढँकनेवाले, मौलिकताओं को ढँकने वाले
आवरण हैं, इसलिए इन्हें हटाने की जरूरत है।

वीतरागता / दिगम्बरत्व के लिए भी बाह्य आवरण
हटाने की जरूरत होती है, इससे स्थूल नग्नता घटित हो
जाती है, लेकिन भीतर से नग्न हो पाना, यह तो उत्तरोत्तर
होनेवाला विकास है।

यहीं दूसरा पक्ष भी है, जिसके भीतर नग्नता आ
गई है, वह बाहर आवरण पसंद नहीं करेगा। उसके ऊपर
से वह गिर जायेगा- इसी भाषा में कहें, क्योंकि ग्रहण करने
का भाव ही उसमें शेष नहीं रहेगा।

चक्रवर्ती भरत को घर में ही वैराग्य हो गया था।
जितनी ऊँचाई तक घर में विरक्त हुआ जा सकता है, उतनी
ऊँचाई तक वैराग्य भरत जी ने पाया। यह भीतर का नाग्न्य
था, उनकी भीतर की ग्रन्थियाँ घटी थीं, साथ में और जो
भी कषायें थी वे कम हुईं। कषायों का, राग-द्वेष का घटना
ही निग्रन्थता है, यही दिगम्बरता की सीढ़ी है। और जैसे
ही उन्होंने वस्त्रों का विमोचन किया और अपने आप में
संलीन हुए, तो अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य हो गया।

नग्नता/निर्वस्त्रता ज्ञान और चारित्र के साथ ऊँचाई
को पा लेती है और समाज को अपरिग्रह का संदेश देती
है। हम अपने परिग्रह और अपनी इच्छाओं का परिमाण
करें, कम से कम में अपना जीवन चलायें। समाज में इन
दिनों बढ़ती चारित्रहीनता (अब्रह्म) है, उससे बचें और
तीसरी बात हम अल्पतम लें और अधिकतम लौटायें।

डुंगपउनउ वनज प्रद डपदपउनउ यह नग्नता से होकर
गुजरनेवाला संदेश है। इस संदेश को पहले स्वयं तक फिर
औरों तक पहुँचायें।

दिगम्बरता किसी साधक को आत्मनिर्भरता की ओर
ले जाती है। सब तरह के अबलम्ब छोड़ने की शुरुआत।
नग्नता एक तरह की पारदर्शिता है प्ज पे ज्जंदेचंमदबल
यह सामाजिकों के लिए विशुद्ध / निर्दोष ट्रान्सपेरेन्सी है।
इसे मैं शुचिता का दर्पण मानता हूँ।

मैं जब विहार कर रहा था, कलकत्ते की तरफ, तब
एक एस.पी. मेरे साथ चल रहे थे, उन्होंने पूछा की आपकी
यह नग्नता हमें क्या संदेश देती है, देश को इससे क्या
बेनीफिट मिला? तब मैंने उन्हें जवाब दिया कि मैं इतने
कम से काम चला सकता हूँ, एक संदेश तो यह मिलता
है कि हम अपनी आवश्यकताओं को कम करें, दूसरा यह
भी की हमने वह वस्त्र जो हमारे काम आते, का भी परित्याग
कर दिया। अब वह किसी और के काम आयेंगे, जिन्हें
इनकी आवश्यकता है। यह नग्नता का अर्थशास्त्र है।

आचार्यश्री से जब पूछा गया कि जैन मुनि नग्न रहते
हैं, दाँत साफ नहीं करते, तो वे अस्वच्छ रहते होंगे। तब
उन्होंने कहा कि 'मैं स्नान नहीं करता? मैं तो चौबीसों घंटे
स्नान करता हूँ' मैं सनलाइट / मूनालाइट में नहाता हूँ। हवाएँ
मुझे सदा स्नान कराती ही हैं। ब्रह्मचारी सदा शुचिः-जो
ब्रह्मचर्य की साधना करता है, उसके शरीर और मन दोनों
पवित्र होते हैं। नग्नता विलक्षण / अमोघ वरदान है।

'चिर्पिग स्पेरो,' जुलाई-अगस्त-
सितम्बर २००८ से साभार

श्री माणिकचंद पाटनी का निधन

दिगम्बर जैन मेरेज ब्यूरो, दि० जैन सोशल ग्रुप जैसी नेक संस्थाओं के जनक, दि० जैन महासमिति
के पूर्व राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष, समाजरत्न श्री माणिकचंद जी पाटनी (बाबूजी) का आकस्मिक निधन दिनांक
१६ अप्रैल २००९ को दोप. ३.४५ पर हो गया। अनकों स्नेहीजनों ने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

जिनमंदिर शिलान्यास समारोह सानंद सम्पन्न

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल जबलपुर में १००८ कुण्डलपुर के बड़े बाबा एवं १०८ आचार्य विद्यासागर
जी महाराज के गगन भेदी जयघोषों के बीच १००८ मुनि सुव्रतनाथ जिनमंदिर का शिलान्यास मंदिर-वेदी-
निर्माता श्री महेन्द्रकुमार जी जैन रायपुर, चूड़ीवाले एवं मूर्तिप्रदाता श्री सुरेन्द्र कुमार जी कटंगहा के कर
कमलों से गुरुकुल अधिष्ठाता प्रतिष्ठाचार्य ब्र० जिनेश जी, ब्र० महेश जी, ब्र० नरेश जी के द्वारा मंत्रोच्चारपूर्वक
सानंद सम्पन्न हुआ।

अधिष्ठाता
ब्र० जिनेशकुमार जैन

दिगम्बर जैन परम्परानुसार तीर्थंकर भगवान् चातुर्मास नहीं करते!

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती जी

जैनशासन के वर्तमानकालीन २४वें तीर्थंकर भगवान् महावीर के बारे में अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ समाज में व्याप्त हैं। जैसे उनका ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में इन्द्र द्वारा गर्भ हरण कराना, विवाह होना, दीक्षा के बाद यत्र-तत्र विचरण करते हुए चण्डकौशिक नाग द्वारा उन पर विष छोड़ा जाना एवं जनसाधारण द्वारा यातनाएँ दिया जाना इत्यादि।

भ्रांतियों की इसी शृंखला में कुछ लोगों ने भगवान् महावीर के ४२ चातुर्मास लिख दिए हैं, जबकि दिगम्बर जैनग्रंथों में कहीं भी उनके चातुर्मासों का उल्लेख नहीं है। इसलिए दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों एवं आगमज्ञाता विद्वानों को, लेखकों को इस विषय पर गंभीरता से चिंतन करना चाहिए।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा प्रकाशित 'जैन तीर्थ वंदना' के अक्टूबर २००८ अंक में पृ० २२ पर "तीर्थंकर महावीर का चातुर्मास काल" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ, जो दिगम्बर जैन आगम के प्रतिकूल है। इस लेख में लेखक ने भगवान् महावीर के द्वारा ४२ चातुर्मास करना सिद्ध किया है। जैसे-

"भगवान् महावीर ने बयालीस चातुर्मास इस धरा पर बिताये।"

वैशाली, वाणिज्यग्राम, राजगृही, चम्पा, मिथिला, श्रावस्ती, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, परिक्षेत्र में विहार कर चालीसवाँ 'मिथिला' में बिताया, यहाँ से फिर 'राजगृही' को विहार किया। यह वह समय था जब 'अग्निभूति' एवं 'वायुभूति' गणधर संसार त्याग मोक्ष गये।

इकतालीसवाँ चातुर्मास राजगृही में बिताया। वर्षा व्यतीत होने पर भी प्रस्थान नहीं किया, यहीं 'अव्यक्त' 'अकाम्पिक', 'मौर्यपुत्र', 'गणिक' गणधरों ने देह त्याग मोक्ष प्राप्त किया।

यह एक विचारणीय विषय है कि ऐसे आगम विरुद्ध लेखों का क्या दिगम्बर जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपना उचित है? क्या पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, संचालक आदि को आगमज्ञान से इतना अनभिज्ञ रहना

उचित है? क्या आगम-विरुद्ध लेख छापने में उनकी कोई नैतिक जिम्मेदारी नहीं है? अथवा क्या भगवान् महावीर के जीवन का दिगम्बर जैन आगमग्रंथों से कोई संबंध स्वीकार्य नहीं है?

पण्डितप्रवर श्री सुमेरचंद जैन दिवाकर ने 'महाश्रमण महावीर' नामक ग्रंथ में तीर्थंकरों के चातुर्मास के निषेध का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि-

'वर्धमानचरित्र (१७/१२७) में कहा है-

परिहारविशुद्धि-संयमेन प्रकटं द्वादशवत्सरांस्तपस्यन्।
स निनाय जगत्रयैकबंधुर्भगवान् ज्ञातिकुलामलाम्बरेन्दुः॥

अर्थात् परिहार विशुद्धि संयम को प्राप्त करके बारह वर्ष तक तपस्या करते हुए भगवान् तीनों लोकों के बंधु ज्ञातृवंश के निर्मल आकाश के चंद्रमा सदृश सुशोभित होते थे।

इसी संयमी का वर्षाकाल में विहार- इस परिहारविशुद्धि संयम की यह विशेषता है कि वह मुनि- 'सदापि प्राणिवधं परिहरति'= सदा प्राणियों के वध का परिहार करता है (गो.जी.सं.टीका, पृ. ८८१)। इस संबंध में यह भी लिखा है कि परिहारविशुद्धिसंयमी रात्रि को विहार छोड़कर तथा संध्या के तीन समयों को बचाता हुआ, सर्वदा दो कोस प्रमाण विहार करता है। इस संयमी के लिए वर्षाकाल में विहार त्याग नहीं कहा गया है, क्योंकि इस ऋद्धि के द्वारा वर्षाकाल में जीव का घात नहीं होता है। इसलिए इस संयम को प्राप्त महान् साधु वर्षाकाल में भी आसक्ति, मोह, ममता आदि का परित्याग कर भ्रमण करते हैं।

गोम्मतसार संस्कृत टीका में लिखा है-

परिहारद्धिसमेतो, जीवः षट्कायसंकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्रं, न लिप्यते पापनिवहेन॥

परिहारविशुद्धिसंयुक्त जीव (मुनि) छह कायरूप जीवों के समूह में विहार करता हुआ जैसे कमलपत्र जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार वह पाप से लिप्त नहीं होता। जब इस संयम के धारक के विषय में उपर्युक्त बात लिखी है, तब यह स्पष्ट है कि परिहारविशुद्धि-

संयम-समन्वित साधुराज वर्षाकाल में चातुर्मास में एकत्र निवास करने के बंधन से विमुक्त हैं।

ऐसी स्थिति में परिहारविशुद्धिसंयम को प्राप्त करनेवाली आध्यात्मिक विभूति भगवान् महावीर के चातुर्मासों की कल्पना औचित्यशून्य है। कोई-कोई तो केवलज्ञान के ३० वर्ष प्रमाणकाल में भी चातुर्मासों की चर्चा करते हैं। महावीर भगवान् जब परिहारविशुद्धि-संयम को प्राप्त कर चुके थे, तब उनका चातुर्मासों में एकत्र निवास मानना सर्वज्ञकथित दिगम्बरजैन आगम के प्रतिकूल है।

इस प्रकार से पं० श्री सुमेरचंद जी दिवाकर ने तीर्थकरों के मुनि अवस्था में एवं केवली अवस्था में चातुर्मास का खण्डन दिगम्बर जैन आगम ग्रंथों से किया है। गणिनी श्री ज्ञानमती माता जी भी कहा करती हैं कि आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य मेरे गुरुदेव आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज भी कहा करते थे कि तीर्थकर भगवान् मुनि अवस्था में चातुर्मास नहीं करते हैं, तो केवली अवस्था में चातुर्मास का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। केवल श्वेताम्बर परम्परानुसार ही तीर्थकर महावीर स्वामी के मुनि अवस्था के १२ एवं केवली अवस्था के ३०, ऐसे ४२ चातुर्मास माने हैं।

इसके अतिरिक्त भी आचारग्रंथों में जहाँ जिनकल्पी एवं स्थविरकल्पी मुनियों का वर्णन आता है, वहाँ जिनेन्द्र भगवान् के समान चर्या का पालन करनेवाले मुनियों को ही जिनकल्पी की संज्ञा प्रदान की गई है। वे भी चातुर्मास में विहार कर सकते हैं। उससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि साक्षात् जिनचर्या को पालनेवाले जिनेन्द्र भगवान् की तुलना तो किन्हीं साधारण मुनियों से की ही नहीं जा सकती है।

पद्मपुराण में कथानक आया है कि चारणऋद्धिधारी सप्तऋषि मुनिराज चातुर्मास के मध्य मथुरा से अयोध्या में आहार करने गये, तो वहाँ मंदिर में विराजमान ह्युति आचार्यदेव ने भक्तिपूर्वक उनकी वंदना की.... आदि।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भगवान् महावीर ने दिगम्बरजैन-आगम-मान्यतानुसार कहीं पर कोई चातुर्मास सम्पन्न नहीं किया, प्रत्युत वे उग्रो

तपस्या करतूे हुए १२ वर्ष तक मुनिमुद्रा में रहे, पुनः केवलज्ञान होने पर तो उनका विहार अधर आकाश में होता था और इन्द्र उनके चरणों के नीचे स्वर्ण कमलों की रचना करते थे। भव्यात्माओं के पुण्यप्रभाव से जगह-जगह उनके समवसरण लगते थे, जिनमें बैठकर भव्यप्राणी दिव्यध्वनि का पानकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होते थे।

यदि किसी दिगम्बरजैन-आचार्य-प्रणीत ग्रंथ में भगवान् महावीर के चातुर्मासों का वर्णन प्राप्त हो, तो विद्वज्जन हमें अवश्य परिचित कराएँ, अन्यथा जो दिगम्बर जैन पत्र-पत्रिकाएँ भगवान् महावीर के चातुर्मास प्रकाशित करती हैं, उनमें संशोधन कराएँ, ताकि महावीर स्वामी के जिनत्व का दिगम्बर-जैनआम्नाय के अनुसार परिचय जन-जन को प्राप्त हो सके।

लेख में दूसरा एक अन्य प्रकरण भी दिगम्बर जैनआम्नाय के विरुद्ध है। वहाँ स्पष्टरूप से भगवान् महावीर के चातुर्मास स्थलों के नाम आदि देकर उनको चंदना द्वारा दिये गये आहार के प्रकरण में लिखा गया है कि-

“वैशाली के सभी श्रेष्ठी अपने चौके में आहार कराने के लिए लालायित थे, निराश भी रहे। जहाँ आहार हुए, उसका दर्शन कर धन्य माना। ‘महावीर’ ने पौष कृष्णा प्रतिपदा को एक महाघोर अभिग्रह धारण किया, जिसके पूर्ण होने पर ही आहार का संकल्प किया। प्रतिज्ञा चार माह तक पूर्ण नहीं हुई, राजा, रानी, प्रजा सभी चिंतित हो गये, तभी वह पुण्य क्षण आया और ‘चंदना’ को आहार देने का मौका मिला। यह अभिग्रह छह माह बाद पूर्ण हुआ। चंदना के मन में सिर्फ यह भाव रहा-केवल इतना सा ध्यान उसे, ये छह महीनों के भूखे हैं। औ, मुझ अभागिनी के समीप, केवल ये कौदों रूखे हैं॥

मैं पूछना चाहती हूँ कि कौन से दिगम्बर जैन ग्रंथ में वर्णन आया है कि भगवान् महावीर के आहार का अभिग्रह छह माह में पूर्ण हुआ? दिगम्बर जैन आम्नाय के अनुसार महासती चंदना के जीवनचरित को उत्तरपुराण एवं महावीरचरित आदि से पढ़ें और इस पर भी अपनी धारणा दिगम्बर जैन आम्नाय के अनुसार ही बनाएँ, यही मेरा मन्तव्य है।

श्रावक की कर्त्तव्य-निष्ठा

स्व० पं० माणिकचन्द्र जी 'कौन्देय'

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवञ्जायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

णमो अरहंताणं

जो चार घातिया कर्मों का नाश कर अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इन चार अनंत चतुष्टयों को प्राप्त कर चुके हैं, शुभ-संस्थानी और वज्रवृषभनाराचसंहनन वाले तथा वादर निगोद, विकलत्रय जीवों से रहित पवित्र परमौदारिक शरीर के धारी, विदेह क्षेत्र के वर्तमान बीस तीर्थंकरों एवं ढाई द्वीप के ८९८४८२ सामान्य केवलियों एवं भूत भविष्य काल के केवलज्ञानियों को नमस्कार हो।

णमो सिद्धाणं

ढाई द्वीप प्रमाण सिद्ध-शिला के ऊपर विराजमान तथा उपरिम सात राजू लम्बे एक राजू चौड़े १५७५ बड़े धनुष मोटे तनुवातवलय के उपरिम १५०० सौवें भाग में विराजमान, बड़ी अवगाहनावाले बाहुबली आदि स्वामी सवा पाँच सौ धनुष ऊँचे सिद्ध भगवान् हैं। तथा नौ लाखवें भाग में विराजमान छोटी अवगाहनावाले साढ़े तीन हाथ ऊँचे (श्रीदत्त आदि) एवं तनुवातवलय के अनेक मध्यम भागों में स्थित अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठियों को प्रणाम हो।

णमो आइरियाणं

दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य वीर्य तप इन पाँच आचारों को स्वयं आचरण करनेवाले तथा दूसरे भव्यों को आचरण करानेवाले तीनों काल के आचार्यों को नमोऽस्तु हो।

णमो उवञ्जायाणं

जो स्वयं रत्नत्रय से युक्त हैं, जिनेन्द्रोक्त द्वादशाङ्ग वाणी का पठन पाठन करते हैं, ऐसे उपाध्याय परमेष्ठियों को प्रणति हो।

णमो लोए सव्वसाहूणं

परमात्मा के ध्यान में संलग्न, दशधर्म, पंचमहाव्रत-धारक, परीषहजयी, छठे गुणस्थान से लेकर चौरहवें तक, सर्व लोकवर्ती ८९९९९९९७ (तीन कम नौ करोड़) मुनिवरो का नमस्कृति होवे।

जैनमत में पंच-परमेष्ठियों के अतिरिक्त चार देवता और भी माने गये हैं। जिनधर्म, जिनागम, जिन-चैत्य

और जिन चैत्यालय, इस प्रकार ९ देवता हैं। सब को नमस्कार हो।

जिनधर्म

आत्मा का स्वभाव-परिणमन तथा क्षमा, मार्दव आदि दसधर्म एवं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य ये मोक्षमार्ग अथवा जीवों की रक्षा करना एवं इनके कारणभूत देवदर्शन, जिनपूजन, स्वाध्याय, संयमपालन, व्रतशील-धारण, उपवास, सामायिक, वैयावृत्य आदि भी धर्म कहे जाते हैं।

जिनागम

द्वादशांग वाणी के एक कम एकट्टी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं। १६३४८३०७८८८ अक्षरों का एक पद होता है। १८४४६७४४०३३७०-९५५१६१५ इन अपुनरुक्त अक्षरों में १६३४ करोड़ आदि का भाग देने पर ११२८३५८००५ इनके पद बन जाते हैं। और ८०१०८१७५ अक्षर बच जाते हैं। इन सबके द्वादशांग, अंगबाह्य ग्रन्थ गूँथे जाते हैं, वे सब जिनागम हैं। तथा गणधरगुम्फित आगम अनुसार बनाये गये, महर्षि प्रणीत समयसार प्रवचनसार, श्लोक वार्तिक, गोम्मटसार, जयधवल, अष्टसहस्री, राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथ भी जिनागम हैं। इनकी मैं वंदना करता हूँ।

जिनचैत्य

तीन लोक में यत्र तत्र विराजमान जिनप्रतिमाएँ, सब जिन-चैत्य हैं। नौ सौ पच्चीस करोड़ त्रेपन लाख सत्ताईस हजार नौ सौ अड़तालीस, ये प्रतिमाएँ अकृत्रिम शाश्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी चैत्य वृक्षों, समवसरण के सिद्धायतन, कूर्य नदियों के उद्गम स्थान पर बने हुए तोरण द्वारों पर या समुद्र में मिलने के तोरण द्वारों पर, पतन स्थान कुण्डों के तोरण द्वारों पर एवं देवों के स्थान पर बने चैत्य वृक्षों, मान-स्तम्भों पर अनेक स्थलों पर अकृत्रिम जिन बिम्ब हैं। तथा अन्यत्र भी यहाँ भरत क्षेत्र आदि में बनाई गई कृत्रिम प्रतिमाएँ हैं, ये सब प्रतिमाएँ चैत्यदेव कहे जाते हैं। इनको तथा भूत-भविष्य काल के कृत्रिम जिन बिम्बों को भी नमन करता हूँ।

जिनचैत्यालय

भवनवासियों के भवनों में सात करोड़ बहत्तर लाख

जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। ८४९७०२३ ऊर्ध्व लोक में अकृत्रिम मन्दिर हैं। इन सभी मन्दिरों में जितनी वेदियाँ हैं, प्रत्येक वेदी में एक-एक जिनप्रतिमा अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त विराजमान है। इनके अतिरिक्त ज्योतिष लोक में अससंख्याते जिन मन्दिर हैं। एक-एक सूर्य, चन्द्रमा, तारे में एक-एक जिन मन्दिर हैं। यों यहाँ से ७९० योजन से लेकर ९०० योजन ऊपर तक ११० योजन मोटे और स्वयंभूरमण समुद्र क्षेत्र तक लंबे चौड़े विराट् क्षेत्र में असंख्याते ज्योतिष विमान हैं। उनमें प्रत्येक में एक-एक मन्दिर है तथा व्यन्तर देवों के असंख्याते स्थानों में एक-एक जिनमन्दिर है। ये सब अकृत्रिम चैत्यालय हैं। तथा भरत, ऐरावत, विदेह क्षेत्र में मनुष्यों द्वारा बनाए हुए अनेक जिनमन्दिर हैं। त्रैकालिक ये सब चैत्यालय देव माने गये हैं, इनको त्रिधानमस्कार होवे।

यह जीव अनादि से निगोद में रहा है। बड़े-बड़े त्रेसठ शलाका पुरुष भी निगोद से निकले हुए हैं। निगोद से निकलकर कोई जीव व्यवहार राशि या विकलत्रय राशि में आ जाये, तो दो हजार सागर तक पृथ्वी आदि या त्रस राशि रह सकता है। इतने काल में या तो तपस्या करके मोक्ष चला जाये, नहीं तो पुनः वह जीव निगोद में पहुँच जायेगा। वहाँ अधिक से अधिक ढाई पुद्गल परिवर्तन काल तक ठहरेगा। पुनः व्यवहार राशि में आ आयेगा। कर्मती ठहरे तो अन्तमुहूर्त ही निगोद छोड़कर पृथ्वीकायिक आदि हो जाये। यों मनुष्य पर्याय की प्राप्ति नितान्त दुर्लभ है।

हर संसारी जीव को आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं ने पीड़ित कर रखा है। अनादिकालीन मिथ्याज्ञान के वश होकर परिग्रह संज्ञा द्वारा सताये गये ये जीव संग्रह में मूर्च्छित हो रहे हैं।

किसी-किसी पुण्य-शाली जीव को १ क्षयोपशमिक, २ विशुद्धि, ३ देशना, ४ प्रयोग्य, ५ करण लब्धियों की प्राप्ति हो जाने पर अमूल्य रत्न सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में जिन-बिम्ब दर्शन, गुरु उपदेश, दुःख वेदना, जातिस्मरण आदि भी निमित्त कारण बन बैठते हैं। एक बार भी सम्यग्दर्शन हो जाये, तो वह अधिकाधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष में धर ही देता है। इतने काल में अनंत जन्म मरण हो सकते हैं। किसी किसी के उपशम सम्यक्त्व और

क्षयोपशम सम्यक्त्व असंख्यात बार तक हो जाते हैं। शान्ति, संवेग, दयाभाव और आस्तिक्य से हम स्वपर में सम्यग्दर्शन हो जाने का अनुमान लगा सकते हैं। सम्यग्दर्शन हो जाने पर संवेग, निर्वेद, स्वनिन्दा, स्वगर्हा, प्रशम, जिनभक्ति, वात्सल्य, अनुकम्पा ये आठ गुण जीव में प्रगट हो जाते हैं। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव निगोद से निकलते हैं और इतने ही कोई भी जीव मोक्ष में जाते हैं। यह अनादि अनंत काल तक के लिये नियम है।

सुदेव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तथा जीव आदि तत्त्वों की श्रद्धा करना अथवा शुद्ध आत्मा का अनुभवन ही सम्यग्दर्शन है। स्वपरभेद-विज्ञान के साथ स्वात्म-संवेदन भी ज्ञान-सहचारी सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के पच्चीस दोष टालने चाहिए। आठ अंगों के विपरीत शंका आदि दोष, आठ मद, तीन मूढताएँ, छह अनायतन, इन पच्चीस दोषों को हटानेवाला सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है। सम्यग्दृष्टि जीव मरने पर नीचे के छह नरक, ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर देवों और सर्व स्त्री, विकलत्रय, एक इन्द्रिय, दुष्कुल आदि निकृष्ट स्थानों में उत्पन्न नहीं होता।

आजकल के मुनिराज या हम आप श्रावक या अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर वैमानिक स्वर्गों में ही जायेंगे। श्री पूज्य कुन्दकुन्द, समंतभद्र, पूज्यपाद, नेमिचंद आदि आचार्य भी मरकर स्वर्ग ही जा चुके हैं और वहाँ आत्म-रस गटागटी करते हुए भोग उपभोगों को भोग रहे हैं। हाँ यह अवश्य है कि जो यहाँ नियमव्रत, आखड़ी आदि चारित्र पालते हुए जीव स्वर्गों में जाते हैं, वे जीव वहाँ भोगों में विरक्त, अनासक्त रहते हैं। तीव्र आसक्त नहीं हो पाते। क्योंकि यहाँ के त्याग, व्रत, तपस्या, आखड़ी के संस्कार वहाँ भी लगे रहते हैं। शेष दीर्घ संसारी जीवों की वहाँ भोगों में तीव्र आसक्ति रहती है, अतः हम आप आदि सभी को यहाँ संसार शरीर भोगों में विरक्त रहना चाहिए, ताकि स्वर्गों में जाकर वहाँ के प्रकृष्ट भोगों को भोगते-भोगते हमारा सम्यग्दर्शन कपूर की तरह उड़ न जाय।

यहाँ आजकल का सम्यग्दृष्टि मानव, श्रावक, मुनि मरकर विदेह में जन्म नहीं लेगा, स्वर्ग जायेगा। कर्मभूमि के मानव या तिर्यञ्च यदि सम्यग्दृष्टि हैं, तो वे स्वर्ग ही जायेंगे। विदेह क्षेत्र में जन्म नहीं लेंगे। सम्यक्त्वं च

(तत्त्वार्थ सूत्र)। हाँ मिथ्यादृष्टि मनुष्य विदेह में जन्म ले सकता है। एकेन्द्रिय जीव भी विदेह में मानव बन सकता है। कोई कोई मोक्ष भी जा सकता है।

सोलह कारण, दश धर्म, भावना-चिन्तन, परिषह जीतना, मन, वचन, काय को पापारंभ में न फँसने देना, पूजन, स्वाध्याय उपवास, प्रतिक्रमण धर्मध्यान आदि से सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है। वह भोगों को अनासक्त भोगते हुए भी अडिग रहता है। सम्यग्दर्शन के समान जीव का कोई कल्याणकारी बंधु नहीं, किसी को सम्यग्दर्शन से एक दो-तीन-चार भव में भी मोक्ष हो सकता है।

सम्यग्दृष्टि जीव के शैल, शिला आदि के सदृश कषाय स्थान नहीं है। मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ही अनंत संसार के कारण हैं। इनका बंध, उदय भी सम्यग्दृष्टि के नहीं है, अतः सप्त व्यसनों का सेवन भी नहीं है। वैषयिक सुख को हेय और आत्मीय सुख को उपादेय समझता हुआ पर-वश वर-जोरी से इन्द्रिय-सम्बंधी सुखों को अनासक्त भोगता हुआ भी, पापों से लिप्त नहीं होता। तथा सम्यग्दृष्टि पाक्षिक श्रावक मूलगुणों, उत्तरगुणों के पालने में श्रद्धा रखकर पाँच परमेष्ठी की शरण लेता है, पाक्षिक की दान और जिनपूजन करने में प्रधानता रहती है। पूजन के पाँच भेद हैं- नित्यमह, अष्टान्हिक मह आदि। मैत्री, प्रमोद, करुणाभाव, मध्यस्थता के भाव रखता हुआ मधु-मांस-मद्य और दूधवाले फलों को छोड़ देता है। पाक्षिक श्रावक इन आठ मूलगुणों को पालता है- १. मद्यत्याग २. मांसत्याग ३. मधुत्याग ४. रात्रिभोजनत्याग ५. दूधवाले फलों का त्याग ६. केवल पंच-परमेष्ठियों की स्तुति करना ७. जीवों पर दया करना ८. पानी छान कर पीना, इन आठ मूल गुणों को धारण करता है और सप्त व्यसनों का त्याग करता है। अचार, मुरब्बा, आसव आदि को पाक्षिक श्रावक नहीं खा सकता। हाँ पहली प्रतिमावाला व्यसनत्याग और मूलगुण धारण में कोई अतिचार नहीं लगने देगा। जो सम्यग्दृष्टि पाँच उदुम्बर फल और सात व्यसनों को सर्वथा त्याग देता है, तथा इनमें अतीचार भी नहीं लगने देता, वह पहली-प्रतिमावाला दार्शनिक श्रावक है। बारह व्रतों को निरतिचार पालता हुआ व्रती 'श्रावक' कहा जाता है। ये गृहस्थ भोजन करने में भी अतिचार नहीं लगने देते। मुनियों के भोजन अन्तराय बहुत ऊँचे हैं, किन्तु श्रावकों के अन्तराय मात्र ये हैं-

1. गीला चमड़ा, गीली हड्डी, मदिरा, मांस, खून

पीव आदि चीजें दिख जावे तो भोजन छोड़ देना चाहिये।

२. रजस्वला स्त्री या सूखा चमड़ा, हड्डी अथवा मांसभोजी बिल्ली, कुत्ता आदि पशु छू जाये तो गृही को भोजन का अंतराय है।

३. अत्यंत कठोर शब्द, करुणा, प्रचुर रोना, चिल्लाना, अग्निदाह, वज्रपात आदि शब्द सुन लिये जायें तो भोजन का अन्तराय है।

४. आखड़ी की गई चीज यदि खाने में आ जाये तो उसी समय भोजन छोड़ देवे। भोज्य पदार्थ में जीवित या मरे चींटी, लट आदि मिश्रित हो जावें, तो भोजन तत्काल छोड़ देना चाहिये।

५. यह भोज्य पदार्थ मांस सरीखा है, खून सरीखा है, साँप, गेडुआ सदृश है, खाण्ड के बने हाथी-घोड़ा आदि में वैसा विकल्प हो जाने पर भोजन का अंतराय हो जाता है। श्रावक को ये अंतराय टालने चाहिये और इनका संयोग होते भोजन छोड़ देना चाहिए।

अभक्ष्य

श्री समंतभद्राचार्य ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में, और श्री अकलंकदेव ने राजवार्तिक में पाँच अभक्ष्य बतलाये हैं- १. त्रसघात २. बहुघात ३. अनिष्ट ४. अनुपसेव्य ५. मादक।

१. त्रसघात- जिसके खाने में द्वीन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का घात होता होय, जैसे मांस, मधु, अचार, मुरब्बा, सड़ा बुसा हुआ भोजन।

२. बहुघात-जिस भोजन में बहुत से स्थावरों का घात हो जैसे आलू, अरबी, मूली, गाजर, अदरक, काई आदि।

३. अनिष्ट-जो वस्तु खाने में शरीरप्रकृति के अनुकूल नहीं पड़े, रोग हो जाये, जैसे वात-प्रकृतिवाले मनुष्य को दही, लस्सी आदि, पित्त प्रकृतिवाले को लाल मिरच आदि।

४. अनुपसेव्य- जो पदार्थ शुद्ध होते हुए भी देखने में मांस, खून पीव, टट्टी, गिडार, गेंडुआ सरीखा दीखे, जैसे भीगा हुआ कतीर, तरबूज आदि।

५. मादक- जो वस्तु खाने पर नशा उत्पन्न करे, जैसे भांग, धतूरा, सुलफा, गाँजा आदि।

पिछले तीन अभक्ष्य प्रासुक होते हुये भी सज्जनों के लिये भक्ष्य नहीं माने गये हैं। एकेन्द्रिय जीवों, वनस्पति फल-फूल में मांस, रक्त, हड्डी नहीं हैं, अतः पकाने,

सुखाने, तपाने पर वे शुद्ध हो जाते हैं, उनको त्यागी जन खा लेते हैं। किन्तु त्रसों के शरीर सुखाने, तपाने पर भी शुद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि हड्डी मांस भले ही सूखे पके हों, उनमें सतत् त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है।

वाणिज्य

श्रावक को ऐसे निन्द्य पदार्थों का व्यापार नहीं करना चाहिये- वन बगीचा काटना, आग लगाना, आटे पीसने की चक्की चलाना, गाड़ी, घोड़ा, गधा, ऊँट आदि वाहनों द्वारा आजीविका का करना, नाक कान छेदने की आजीविका, लाख, गंधक, संखिया, हड़ताल, तेजाब, केश (बाल), मद्य बेचना, दासी-दास विक्रय, अस्त्र-शस्त्रों की अजीविका, मांस, चर्म जूता विक्रय आदि की आजीविका श्रावक को नहीं करनी चाहिये।

सामायिक

श्रावक को सामायिक करते समय हिंसा आदि पापों का त्याग कर अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिये। आत्मा नित्य है, शुभ है, शरण है, आनंदमय है, ज्ञान चैतन्य स्वरूप है और यह संसार अशरण है, अशुभ है, अनित्य है, दुःख स्वरूप है, ऐसा विचार करना चाहिए।

जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञानुसार सूक्ष्म जीव, परमाणु, धर्म, अधर्म द्रव्य का विचार करना चाहिये। ये संसारी जीवन अपने मिथ्यात्व, अविरति कषायों से अष्ट कर्मों को बाँधते हैं। उनका उदय आने पर अनेक कष्ट भोग रहे हैं। ये जीव इन दुःखों से कैसे छूटें? कर्मों का विपाक किस किस प्रकार हो रहा है, इत्यादि चिंतन किया जाए।

इस तीन सौ तैतालीस घन राजू प्रमाण लोक में, नीचे छह राजुओं में सात नरक हैं। उनके नीचे सात राजू लम्बे, छह राजू चौड़े, एक राजू मोटे स्थल में वाद निगोद है। सूक्ष्म-निगोद तो सर्वत्र व्यापक है। ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देव, लौकांतिक देव, अहमिन्द्र देव, निवास करते हैं। सबसे ऊपर अनन्तानंत मुक्त जीव हैं। उन सबका सिर अलोकाकाश से छू रहा है। पैंतालीस लाख योजन लम्बे चौड़े सिद्ध लोक में अनन्तानंत मुक्त जीव हैं। वहाँ पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, तथा नित्य-निगोद, इतर-गति निगोद, अंसख्याते अनन्त जीव हैं। हाँ विकलत्रय नहीं हैं। इत्यादि, परामर्श सामायिक में करना चाहिये। आत्मा के गुणों का मनन करना चाहिये। किसी से राग नहीं करो, द्वेष नहीं करो, मोह नहीं करो। समताभाव उदासीन परिणाम रखो।

पहिले से ही पशु, पक्षी, स्त्री, बालक आदि से रहित शुद्ध स्थान को देखकर सामायिक में बैठो। पुनः कोई विघ्न आ जाये, वज्रपात भी हो जाये, तो सामायिक काल में सौम्य भावों से सहन करो। आर्तध्यान, रौद्रध्यान को मन में मत आने दो। धर्मध्यान में धैर्य समता-पूर्वक चित्त लगाये रखो। ध्यान दो-चार मिनट ही करो, अधिक समय तक एकाग्र चित्त करने से शारीरिक क्षति उठानी पड़ेगी। कोरा अविचारित साहस क्लेश-कर हो जाता है। आचार्यों ने अन्तर्मुहर्त काल तक ही ध्यान लगाना बताया है। उत्तमसंहननवाले पुरुष भी अंतर्मुहर्त से अधिक ध्यान नहीं लगा सकते। हाँ जाप्य, भावना या स्तोत्र पाठ करने में समय अधिक लगाओ। दो घड़ी में बीस-पच्चीस बार ध्यान लगाने के लिये ३५, १६, ६, ५, ४, २, १ अक्षरों के मंत्र हैं।

णमोकार मंत्र में पैंतीस अक्षर हैं।

‘अहंतु सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः’ इसमें सोलह अक्षर हैं।

‘ऊँ नमः सिद्धेभ्यः’ में छह अक्षर हैं।

‘अ सि आ उ सा’ में पाँच अक्षर हैं।

‘अरहंत’, ‘सिद्ध’, ऊँ, इनमें चार, दो और एक अक्षर हैं। और भी अनेक छोटे बड़े मंत्र हैं, उनका जाप्य करना चाहिये।

सहस्रनाम के एक जहार आठ नामों का भी जाप कोई-कोई करते हैं, जैसे (१) ऊँ हीं श्रीमते नमः (२) ऊँ हीं वृषभाय नमः इत्यादि नामों से पहले ऊँ हीं लगाकर चतुर्थी विभक्ति के साथ नमः पद लगा दिया जाये, तो वह मंत्र बन जाता है। यों बड़े शुद्ध भावों से सामायिक करते समय सातिशय पुण्यबंध होता है, तथा साथ ही प्रशस्त संवर निर्जरा भी होती है।

श्रावक को काम्य मंत्र, वशीकरण मंत्र, जय-पराजय के रागद्वेषवर्धक मंत्रों के झगड़ों में नहीं फँसना चाहिये। सच्चा गुरु नहीं मिलने से उल्टा अनिष्ट फल हो जाता है। पागलपन या मरण भी हो सकता है। अतः क्वचित् कदापि काले नागों से मत खेलो। शुद्ध मंत्र ही वीतराग भावों को बढ़ाते हैं, चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति करना है, अन्य कुछ नहीं।

निर्जरा

जिन-दर्शन, पूजन, तीर्थ-यात्रा, दान, प्रतिष्ठा कराना, जिनालय बनवाना, आदि शुभ क्रियाओं से श्रावक को केवल पुण्यबंध ही नहीं होता, किन्तु अंसख्यातगुणी निर्जरा और संवर भी होते हैं। ऐसा गोम्मटसार, तत्त्वार्थ-सूत्र आदि

में कण्ठोक्त कहा है। इसके आगे प्रोषधोपवास आदि प्रतिमाओं का विस्तृत वर्णन जैन-ग्रंथों में पाया जाता है।

दिनचर्या

प्रातरेव समुत्थाय, प्रातःकाल ही ब्रह्ममुहूर्त में सीधे करवट से उठकर शयन कक्ष में बैठकर एकाग्र-चित्त करके पंचनमस्कार मंत्र का ध्यान करें। सूर्य अस्त से अलगे दिन सूर्य उदय तक पन्द्रह मुहूर्त का रात्रि काल कहलाता है। दो घड़ी का यानी पैंतालीस मिनट का एक मुहूर्त होता है। पन्द्रह मुहूर्त में से चौदहवाँ मुहूर्त ब्रह्म मुहूर्त कहलाता है। पुनः शौच, दंत धावन, स्नान करके जिनदर्शन पूजन के लिये समुद्यत हो जायें।

श्री जिन मन्दिर में जाकर शुद्ध द्रव्य और शुद्ध भावों से श्री अरहंत-सिद्ध-साधुओं की पूजन करें। जाप्य, ध्यान, स्वाध्याय भी करें। वहाँ कोई उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र मिल जायें, तो घर लाकर उनको यथा-विधि आहार दान करके स्वयं शुद्ध आहार करें। यह भी दृष्टि में रखें कि मेरे आश्रित हो रहे स्त्री, पुत्र-वधू, बच्चे आदि कुटुम्बियों तथा सेवक-सेविकाओं, अतिथि के लिये पर्याप्त भोजन द्रव्य विद्यमान है। पुनः स्वल्प विश्राम कर न्यायपूर्वक द्रव्य उपार्जन के लिये अर्थ पुरुषार्थ का सेवन करें। मध्याह्न वंदना कर सकें तो अच्छा है। सायंकाल कुछ धर्म-चर्चा करते हुए विद्वानों, सज्जनों में गोष्ठी, तत्त्व-चर्चा, शंका-समाधान करें, करावें। सायंकाल में जाप्य ध्यान

आत्म-मनन करें।

ब्रह्मचर्य पालन का यथायोग्य अभ्यास रखें। रात्रि को नमस्कार मंत्र और जिनगुण-स्मरण करते हुए शयन करें। बीच में यदि निद्रा भंग हो जाये, तो २४ तीर्थकरों का नाम जपें अथवा अनित्य-अशरण आदि अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करें। तत्त्वार्थसूत्र में पाँच व्रतों की मनोगुप्ति, वचनगुप्ति आदि पच्चीस भावनाएँ कहीं हैं, उनका विचार करो। इतने में यदि निद्रा आ जाये तो सो जायें, पुनः प्रातःकाल सामायिक जाप्य, ध्यान करें।

सल्लेखना

श्रावक को सर्वदा समाधिमरण करने के लिये उद्यत रहना चाहिए। न जाने कब सल्लेखना का प्रकरण उपस्थित हो जाये। आजकल सभी गरीब-अमीर, पंडित, मूर्ख, मुनिराज, श्रावक सभी को अकस्मात् भय के प्रकरण कदाचित् मिल जाते हैं। यों निर्मल-अक्षुण्ण सम्यग्दर्शन तथा निर्दोष-अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत एवं विधि-पूर्वक सल्लेखना कर लेना, यही संपूर्ण श्रावक धर्म है। दशलक्षणपर्व में दशधर्म, षोडशकारण भावनाएँ, रत्नत्रय धर्म का पालन, अभिषेक पूजन, रात्रिजागरण, धार्मिक गायन-वादन, नृत्य ये सभी श्रावकधर्म के कारण हैं।

अंतिम लक्ष्य वीतराग विज्ञान और रत्नत्रय द्वारा निःश्रेयस प्राप्त करना है।

‘कौन्देयकौमुदी’ से साभार

श्री अमित पाटनी सेवायतन के शिरोमणि संरक्षक बने

मधुबन- देश के प्रतिष्ठित व्यावसायिक प्रतिष्ठान में पाटनी कम्प्यूटर्स लि० मुम्बई के श्री अमित पाटनी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रुचि पाटनी सहित श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा करने पधारे और उन्होंने इस क्रम में श्रीसेवायतन द्वारा किये जा रहे कार्यों का अवलोकन किया। श्री सेवायतन द्वारा किये जा रहे सेवाकार्यों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए और श्री प्रमाण सागर जी महाराज का आशीर्वाद लेकर एवं श्रीमती पुष्पा बैनाड़ा आगरा की प्रेरणा से श्रीसेवायतन के शिरोमणि संरक्षक बने। उन्होंने श्रीसेवायतन के अध्यक्ष श्री एम.पी. अजमेरा राँची, महामंत्री श्री राजकुमार अजमेरा हजारीबाग, मंत्री श्री सुनील कुमार अजमेरा हजारीबाग, सुरेश विनायक्या कोषाध्यक्ष हजारीबाग द्वारा श्री सेवायतन को प्रदत्त उनकी सेवा के लिए बहुत प्रशंसा की। उन्होंने श्री एम. पी. अजमेरा के प्रति विशेष आदर प्रदर्शित करते हुए कहा कि वे प्रतिवर्ष शिखरजी की यात्रा करने का प्रयास करेंगे।

डॉ० डी० सी० जैन, श्रीमति शांता पाटनी किशनगढ़ एवं श्री धर्मवीर लखनऊ श्रीसेवायतन से जुड़े।

दिल्ली- यहाँ श्रीसेवायतन एवं सम्मेदशिखर मित्रमण्डल के द्वारा आयोजित संकल्प एवं सम्मान समारोह में डॉ० डी.सी. जैन, विख्यात न्यूरो चिकित्सक एवं श्री धर्मवीर इन्जीनियर इनचीफ यू.पी. सरकार ने श्रीसेवायतन की सदस्यता ग्रहण की और उन्होंने श्रीसेवायतन के सेवा कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए, अन्य लोगों को भी श्री सेवायतन से जुड़ने की प्रेरणा दी।

किशनगढ़- यहाँ आयोजित राजस्थान प्रदेश श्री सेवायतन समन्वय समिति की बैठक स्थानीय आर.के. कम्प्यूनिटी हॉल में संपन्न हुयी, जिसमें श्री शांता पाटनी (आर.के. मार्बल्स) श्रीसेवायतन की ट्रस्टी बनकर श्रीसेवायतन से जुड़ीं। श्री एम.पी. अजमेरा अध्यक्ष श्री सेवायतन ने बैठक की अध्यक्षता की।

तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन

तृतीय अध्याय

पं० महेशकुमार जैन व्याख्याता

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदश-दश-त्रि-पंचो नैकनरक
शतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सुखबोध-
तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वार्थवृत्ति एवं तत्त्वार्थमंजूषा आदि ग्रन्थों
में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

भावार्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द का अर्थ 'और'
है।

संक्लिष्टासुरोदीरित दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः।
सुतप्तयोरसपायननिष्टप्तायस्तम्भालिंगनकूटशाल्मल्या-रोहणा-
वतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैलावसेचनायः-
कुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैरतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभि-
नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द पूर्व के दुःख के कारणों
का समुच्चय करने के लिए दिया है। परस्पर खूब तपाया
हुआ लोहे का रस पिलाना, अत्यन्त तपाये गये लौह
स्तम्भ का आलिंगन, कूट सेमर के वृक्ष पर चढ़ाना उतारना,
लोहे के घन से मारना, बसूला और छुरा से तराशना,
तपाये गये खारे तेल से सींचना, तेल की कढ़ाही में
पकाना, भाड़ में भूँजना, वैतरणी में डुबाना, यंत्र से पेलना
आदि के द्वारा नारकियों के परस्पर दुःख उत्पन्न कराते
हैं।

राजवार्तिक- 'च' शब्दः पूर्वहेतुसमुच्चयार्थः।
संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च पूर्वोक्तहेतुदीरितदुःखाश्चेति
समुच्चयार्थश्चशब्दः। इतरथा हि तिसृषु भूमिषु पूर्वोक्तहेत्व-
भावः प्रतीयेत।

अर्थ- 'च' शब्द पूर्वोक्त दुःख हेतु के समुच्चय
के लिए है। तीनों पृथ्वियों में संक्लिष्ट असुरोदीरित दुःख,
परस्परोदीरित दुःख और भूमिजन्य शीतोष्ण दुःख भी होता
है। इन सबका ज्ञान कराने के लिए 'च' शब्द का प्रयोग
किया है। यदि 'च' शब्द का प्रयोग नहीं करते, तो तीनों
भूमियों में पूर्वोक्त हेतुओं के अभाव का प्रसंग आता।
अतः यह सूत्र ठीक है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्द पूर्वहेतुसमुच्चयार्थः।

अर्थ- 'च' शब्द पूर्व सूत्र में कहे गये दुःख
के कारणों का ग्रहण करने के लिए है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतु-
समुच्चयार्थः। अन्यथा पूर्वसूत्रस्येदं सूत्रमुपरिष्ठभूमित्रये
बाधकं स्यादित्यर्थः।

अर्थ- 'च' शब्द पूर्वोक्त दुःखों का समुच्चय करने
के लिए है। अन्यथा ऊपर की तीन भूमियों में यह सूत्र
पूर्वसूत्र को बाधा करेगा। अभिप्राय यह है कि यदि इस
सूत्र में 'च' शब्द नहीं होता, तो पूर्व सूत्र में कहा गया
परस्पर उदीरित दुःख का तीसरे नरक तक अभाव हो
जाता। फिर यह अर्थ होता कि पहले के तीन नरकों
में असुर द्वारा प्रदत्त दुःख है और शेष भूमियों में परस्पर
उदीरित दुःख है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारः पूर्वोक्तदुःखसमुच्चयार्थः। तेन
तप्तलोहपुत्तलिकालिंगनतप्ततैलावसेचनाऽयःकुम्भीपचनादिकं
दुःखमुत्पादयन्ति ते असुरा इति तात्पर्यम्।

अर्थ- सूत्र में चकार पूर्वोक्त दुःख का समुच्चय
करने के लिए है, जिससे गर्म लोहे की पुलतियों से
आलिंगन, तेल की कढ़ाही में पकाना आदि दुःख भी
असुरकुमारकृत दिये जाते हैं।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज- तीसरे नरक
के नारकियों को देवों द्वारा कदाचित् सुख भी दिया जाता
है।

भावार्थ- तृतीय पृथ्वी तक के नारकियों को असुरों
के द्वारा दिया गया दुःख होता है एवं सूत्र में 'च' शब्द
पूर्व सूत्र में कहे गये दुःखों का समुच्चय करने के लिए
है। यथा- असुरों के द्वारा परस्पर खूब तपाया हुआ लोहे
का रस पिलाना, लोहे के घन से मारना, बसूला और
छुरा से तराशना आदि। यदि 'च' शब्द न देते, तो प्रारम्भ
की 3 पृथ्वियों में परस्पर दुःख का अभाव हो जाता।

मणिविचित्रपाश्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

सर्वार्थसिद्धि एवं राजवार्तिक- च शब्दो मध्य-
समुच्चयार्थः। य एषां मूलविस्तारः स उपरि मध्ये च तुल्यः।

अर्थ- 'च' शब्द मध्यभाग का समुच्चय करने
के लिए है। तात्पर्य यह है कि इनका मूल में जो विस्तार
है, वही ऊपर और मध्य में है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दान्मध्ये च तथा चानिष्ट-

विस्तारसंस्थाननिवृत्तिः प्रतीयते।

अर्थः- सूत्र में पड़े हुए 'च' शब्द से मध्य में भी उनका समान विस्तार समझ लेना चाहिये और इस प्रकार ऊपर, नीचे, बीच में तुल्य विस्तार का कथन करने से अनिष्ट विस्तारवाले संस्थानों की निवृत्ति प्रतीत हो जाती है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- उपर्यूर्ध्वभागे मूलेऽधोभागे च शब्दान्मध्ये भागे च तुल्यः समानो विस्तारो विष्कम्भो येषां ते तुल्यविस्ताराः। हिमवदादयः कुलपर्वताः बोधव्याः।

अर्थ- इनका उपरि भाग, मूल भाग और 'च' शब्द से मध्य भाग सर्व ही समान चौड़ा है, ऐसे ये कुलाचल विशिष्ट आकारवाले जानने चाहिये।

तत्त्वार्थवृत्ति- उपरि मस्तके मूले बुध्नभागे चकारात् मध्ये च, तुल्यविस्ताराः तुल्यो विस्तारो येषां ते तुल्यविस्ताराः। अनिष्टसंस्थानरहिताः, समानविस्तारा इत्यर्थः।

अर्थः- ऊपर, नीचे और चकार से मध्य में तुल्य विस्तार है, समान है विस्तार जिनका वे तुल्य विस्तार वाले हैं, अनिष्ट आकृति से रहित हैं, समान विस्तार वाले हैं, यह इसका अर्थ है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज- कुलाचलों के मध्य का विस्तार ३ प्रकार से घटित होता है। यथा-
1. दीवाल की तरह। 2. मृदंग पर रखे मृदंग की तरह।
3. डमरु पर रखे डमरु की तरह।

भावार्थः- हिमवन् महाहिमवन् आदि कुलाचल ऊपर, नीचे एवं 'च' शब्द से मध्य में भी समान विस्तारवाले हैं, यह अर्थ फलित होता है। एवं अनिष्ट विस्तार की निवृत्ति के लिए 'च' शब्द दिया है।

तद्विगुणद्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च॥ १८॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सुखबोध-तत्त्वार्थवृत्ति एवं तत्त्वार्थमंजूषा आदि ग्रन्थों में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

तत्त्वार्थवृत्ति- ताभ्यां पद्महृदपुष्कराभ्यां द्विगुण-द्विगुणास्तद्विगुणद्विगुणा विस्तारायामावगाहा हृदाः सरोवराणि भविन्त। पुष्कराणि च पद्मानि च द्विगुणद्विगुणविस्तारायामानि ज्ञातव्यानि। अत्र चशब्दः उक्तसमुच्चयार्थः।

अर्थः- पद्म हृद और उसके कमल की अपेक्षा दूने-दूने विस्तार, आयाम और अगवाहवाले हृद और कमल होते हैं अर्थात् पद्मतालाब एवं उसके कमल की अपेक्षा आगे के तालाब और कमलों की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई दूनी-दूनी जाननी चाहिए। यहाँ 'च' शब्द इसी

के समुच्चय के लिए है।

भावार्थः- हिमवन् कुलाचल में स्थित पद्म तालाब एवं कमल की जो लम्बाई, चौड़ाई और गहराई है, तदपेक्षा महाहिमवन् आदि कुलाचलों में स्थित तालाब और कमलों की लम्बाई, चौड़ाई व गहराई दूनी-दूनी है।

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट् चैकोन-विंशतिभागा योजनस्य॥ २४॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक श्लोकवार्तिक, सुखबोध-तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वार्थवृत्ति एवं तत्त्वार्थमंजूषा आदि ग्रन्थों में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

भावार्थः- सूत्र में आये 'च' शब्द का अर्थ 'और' है।

पुष्करार्थे च॥ ३४॥

सर्वार्थसिद्धि एवं तत्त्वार्थवृत्ति में 'च' शब्द के विषय में कोई कथन नहीं दिया है।

राजवार्तिक- संख्याभ्यावृत्यनुवर्तनार्थश्चशब्दः। द्विरित्येतस्याः संख्याभ्यावृत्तेरनुवर्तनार्थश्चशब्दः क्रियते, पुष्करार्थे च द्विर्भरतादयः संख्यायन्त इति।

अर्थ- 'च' शब्द संख्या की अभ्यावृत्ति की अनुवर्तना के लिए है। द्वि इस संख्या की अभ्यावृत्ति की अनुवर्तना को 'च' शब्द का ग्रहण किया गया है। आधे पुष्करवर द्वीप में भी भरतादि २-२ हैं, इस संख्या को बताने के लिए 'च' शब्द का प्रयोग है।

श्लोकवार्तिक- संख्याभ्यावृत्यनुवर्तनार्थश्चशब्द। धातकीखण्डवत् पुष्करार्थे च भरतादयो द्विर्मायन्ते।

अर्थ- 'द्विर्धातकीखण्डे' इस पूर्व सूत्र से द्विर् इस संख्या की अभ्यावृत्ति का अनुवर्तन करने के लिए यहाँ सूत्र में 'च' शब्द दिया गया है। धातकीखण्ड के समान पुष्करार्थ में भी भरत आदि २ बार गिने जाते हैं।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- तस्मिन् पुष्करार्थे जम्बू-द्वीपभरतादयो द्विर्मायन्त इत्येतत्पार्थस्यात्राभिसम्बन्धार्थश्च-शब्दः।

अर्थ- पुष्करार्थ में जम्बूद्वीप के भरत आदि से दुगुणपना है, इस अर्थ का यहाँ सम्बन्ध करने के लिए सूत्र में 'च' शब्द आया है।

भावार्थ- धातकीखण्ड की तरह पुष्करार्थ में भी २ भरत, २ ऐरावत क्षेत्र, २ मेरु आदि व्यवस्थायें समान हैं। इसी की सूचना देने सूत्र में 'च' शब्द प्रयुक्त है।

आर्याम्लेच्छाश्च॥ ३६॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सुख-

बोधतत्त्वार्थवृत्ति एवं तत्त्वार्थमंजूषा आदि ग्रन्थों में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारः परस्परसमुच्चये वर्तते। तेनायमर्थः- आर्या म्लेच्छाश्चोभयेऽपि मनुष्याः कथ्यन्ते। तत्रार्याः द्विप्रकारा भवन्तः। कौ-तौ द्वौ प्रकारौ? एके ऋद्धिप्राप्ता आर्या, अन्ये ऋद्धिरहिताश्च। ऋद्धिप्राप्ता आर्या अष्टविधाः। के ते अष्टौ विधा? बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तपो, बलमौषधं, रसः क्षेत्रं चेति।..... ऋद्धिरहिताः आर्यास्तु पंचप्रकारा भवन्तः। के ते पंचप्रकाराः? सम्यक्त्वार्याः, चारित्र्यार्याः, कर्मार्याः, जात्यार्याः, क्षेत्रार्याश्चेति। म्लेच्छास्तु द्विप्रकाराः। अन्तर्द्वीपोद्भवा, कर्मभूम्युद्भवाश्चेति। एवं षण्णवति म्लेच्छद्वीपाः। कर्मभूम्युद्भवाश्च म्लेच्छा पुलिन्दशवरयवन्दशकखसबर्बरादयो ज्ञातव्याः।

अर्थ- चकार शब्द परस्पर समुच्चय के लिए है। इससे यह अर्थ है कि आर्य और म्लेच्छ दोनों के २-२ भेद हैं। आर्यों के २ भेद- (१) ऋद्धिप्राप्त आर्य (२) ऋद्धिरहित आर्य। ऋद्धिप्राप्त आर्य ८ प्रकार के हैं- बुद्धिऋद्धि, क्रियाऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि और क्षेत्रऋद्धि। ऋद्धिरहित आर्य ५ प्रकार के हैं- सम्यक्त्वार्थ, चारित्र्यार्थ, कर्मार्थ, जात्यार्थ, क्षेत्रार्थ। म्लेच्छ के २ भेद- १. अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ २. कर्मभूमिज म्लेच्छ। अन्तर्द्वीपज म्लेच्छों के ९६ द्वीप हैं, जिन्हें कुभोगभूमि कहते हैं। कर्मभूमिज म्लेच्छों के पुलिन्द, शबर, यवन, शक, खस, बर्बर आदि अनेक भेद जानने चाहिये।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज- मनुष्य आर्य,

म्लेच्छ के भेद से २ प्रकार के हैं। 'च' शब्द से मनुष्य सम्मूर्धन भी होते हैं।

भावार्थ- मनुष्यों के २ भेद होते हैं- आर्य और म्लेच्छ। आर्यों के २ भेद हैं। म्लेच्छों के भी २ भेद हैं। मनुष्य सम्मूर्धन जन्मवाले भी होते हैं। इन सबके समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया है।

तिर्यग्योनिजानां च॥ ३९॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक एवं तत्त्वार्थ-मंजूषा आदि ग्रन्थों में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्द प्रकृताभि-सम्बन्धार्थः। तेन तिर्यग्योनिजानां चोत्कृष्टा भवस्थिति-स्त्रिपत्योपमा। जघन्यान्तर्मूर्हुता मध्येऽनेकविधविकल्प इति चात्र वेदितव्यम्।

अर्थ- 'च' शब्द प्रकृत अर्थ के सम्बन्ध के लिए है। तिर्यचों की भी उत्कृष्ट भवस्थिति ३ पत्य की है तथा जघन्यस्थिति अन्तर्मूर्हुत की है, मध्य के अनेक भेद हैं ऐसा जानना चाहिये।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारः परस्परसमुच्चये वर्तते।

अर्थ- चकार शब्द परस्पर समुच्चय के लिए है, जिससे यह जाना जाता है कि तिर्यचों में मनुष्यों के समान स्थिति होती है।

भावार्थ- मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु ३ पत्य एवं जघन्य आयु अन्तर्मूर्हुत प्रमाण है। यही प्रमाण तिर्यच आयु का भी है। इसी का ज्ञान कराने सूत्र में 'च' शब्द दिया है।

श्री दि० जैन संस्कृति संस्थान, सांगानेर

श्रीसेवायतन द्वारा मधुबन (शिखर जी) को वृन्दावन बनाने की कवायद शुरू

मधुबन को वृन्दावन बनाने का सपना आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने देखा है, उसे साकार करने का बीड़ा श्रीसेवायतन ने उठाया है।

श्री शिखर जी के तलहटी में बसे गाँवों में फैली गरीबी, अशिक्षा और पलायन को देखते हुए गाँव वासियों को दुग्ध उत्पादन योजना से जोड़कर वैकल्पिक रोजगार का अवसर प्रदान करते हुए उनके स्वावलम्बी एवं समृद्ध जीवन का सपना श्रीसेवायतन झारखण्ड सरकार के साथ मिलकर साकार कर रहा है।

गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों को एक सौ पचास गायें उत्तम नस्ल की दी जा रही हैं। गाय वितरण का कार्य श्रीसेवायतन के अध्यक्ष श्री एम.पी. अजमेरा, राँची, मंत्री श्री सुनील अजमेरा, हजारीबाग एवं संजय जैन नोएडा, नई दिल्ली आदि के सत्प्रयत्नों से प्रारंभ हो चुका है।

संस्था के अध्यक्ष श्री एम. पी. अजमेरा के कथनानुसार दुग्धयोजना से प्रति परिवार करीब तीन हजार रूपयों की मासिक आमदनी होगी। शिखर जी में दूध की भारी माँग है। छह माह के बाद पुनः एक सौ गायें प्रदान की जायेंगी। जब ग्रामवासी गाय पालन एवं दुग्ध उत्पादन में दक्ष हो जाएँगे, तब आगे यहाँ झारखण्ड सरकार के सहयोग से चिलिंग प्लाण्ट लगेगा। इसमें ग्रामवासियों को उनके उत्पाद का बेहतर मूल्य मिलेगा। इससे यहाँ के ग्रामवासियों का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा। इसके साथ ही श्रीसेवायतन इनके बच्चों को अच्छी शिक्षा एवं स्वास्थ्यसुविधा प्रदान करने के लिए भी कृतसंकल्प है।

विमल सेठी, गया (प्रचार मंत्री श्रीसेवायतन)

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज : श्रेष्ठ शिष्य, श्रेष्ठ गुरु

डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन, 'भारती'

भारतीय वसुन्धरा सदैव संतचरणों का स्पर्श पाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती रही है। आज भी ऐसे संत हैं, जिनके ज्ञान एवं चारित्र के उजास से अनेक नर-नारी प्रभावित हैं, चमत्कृत हैं और उनके प्रति परम आस्था से जुड़े हुए हैं। जैनधर्म परम्परा के वर्तमान में सर्वोच्च आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ऐसे ही संत हैं, जिन्हें ५०५० आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का शिष्य बनने का गौरव मिला और उन्हीं का सल्लेखना निर्यापक आचार्य बनने का सौभाग्य भी उन्हें मिला। इसी तरह आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने मुनि श्री समयसागर जी, मुनि श्री योगसागर जी, मुनि श्री क्षमासागर जी, मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी, आर्यिका श्री गुरुमति जी, आर्यिका श्री दृढमति जी, आर्यिका श्री मृदुमति जी जैसे द्विशताधिक शिष्यों का श्रेष्ठ गुरु बनकर, उन्हें अपने ही पद-चिन्हों का अनुगामी बनाया। इस तरह वे श्रेष्ठ शिष्य भी हैं और श्रेष्ठ गुरु भी। हम सब उनके इस शिष्य और गुरु दोनों रूपों के प्रति नतमस्तक हैं।

वर्तमान संतों में जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिये जाने का एक प्रमुख कारण और भी है, और वह यह है कि वे पुरुषार्थी हैं, मन-वाणी और कर्म की एकता से संपृक्त हैं। उनमें विचारशीलता है, विचारों को कलम में पिरोकर कागज पर उतारने की कला उन्हें आती है। वे सहज कवि भी हैं और सकल कवि भी। इसीलिए वे स्फुट काव्य से लेकर महाकाव्य तक रचते हैं, समीक्षकों, आलोचकों, पाठकों के विचारों से रूबरू भी होते हैं। वे अपने प्रति सजग हैं और दूसरों के प्रति सहिष्णु भी। उनकी आस्था उन्हें साधना पथ की ओर बढ़ाती है। उनकी मान्यता है कि-

आस्था के विषय को
आत्मसात् करना हो
उसे अनुभूत करना हो
तो
साधना के साँचे में
स्वयं को ढालना होगा सहर्ष!

(मूकमाटी, पृ. १०)

यह आस्था क्यों जरूरी है? इस विषय में आचार्यश्री विद्यासागर जी की मान्यता है कि-

यह बात सही है कि,
आस्था के बिना रास्ता नहीं
मूल के बिना चूल नहीं,
परन्तु
मूल में कभी
फूल खिले हैं ?
फलों का दल वह
दोलायित होता है
चूल पर ही आखिर!

(मूकमाटी, पृ. १०)

उन्होंने अपने एक 'हायकू' में इस भाव को लिखा है कि- मूल की व्याख्या इस तरह नहीं होना चाहिए जैसे कि बरगद की जड़ें। कहने का तात्पर्य है कि हम जड़ों को जाने, जड़ों को सींचें, जड़ों की रक्षा करें क्योंकि जड़ के बिना वृक्ष की स्थिरता संभव नहीं। इस तरह की भावनावाले आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा विरचित साहित्य इस प्रकार है-

संस्कृत शतकम्- श्रमण शतकम्, भावना शतकम्, परिषह शतकम्, सुनीति शतकम्, चैतन्य चन्द्रोदय (शतकम्)।

हिन्दी काव्य- मूकमाटी (महाकाव्य), नर्मदा का नरम कंकर, डूबो मत लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता?, चेतना के गहराव में।

हिन्दी शतक- निजानुभवशतक, पूर्णोदयशतक, मुक्तककाव्यशतक, दोहा थुदिशतक।

स्तुति- शांतिसागर स्तुति, वीरसागर स्तुति, शिवसागर स्तुति, ज्ञानसागर स्तुति शारदा स्तुति (हिन्दी संस्कृत), MY SAINT-MY SELF

प्रवचन संग्रह- गुरुवाणी, प्रवचन-पारिजात, प्रवचन-प्रमेय आदि अनेक प्रवचन संग्रह प्रकाशित।

पद्यानुवाद- जैनगीता (समणसुत्तम्), कुन्दकुन्द का कुन्दन (समयसार), निजामृतपान (कलशानुवाद), द्रव्यसंग्रह, अष्टपाहुड़, नियमसार, द्वादश अनुप्रेक्षा, समन्तभद्र की

भद्रता (स्वयंभूस्तोत्र), गुणोदय (आत्मानुशासन), रयण मञ्जूषा (रत्नकरण्डक श्रावकाचार), आत्म मीमांसा (देवागम स्तोत्र), इष्टोपदेश, कल्याण मंदिर स्तोत्र, समाधि सुधा शतकम्, योगसार, एकीभाव स्तोत्र, नंदीश्वर भक्ति, गोमटेश अष्टक आदि का प्रणयन किया है।

इस साहित्य को पढ़कर ज्ञात होता है कि उत्कृष्ट साधुता के साथ-साथ जिनमें साहित्य सर्जना के प्रति गहरी रुचि एवं सहज भावाभिव्यक्ति की क्षमता विद्यमान है, ऐसे अनिवार्य भारतीय संत का नाम है आचार्य श्री विद्यासागर। उन्होंने अपनी चर्या और चिन्तन में जो कुछ पाया है वह परम्परा से पुष्ट भी है, आधुनिकता से छिन्न-भिन्न भी नहीं है। वे विरल हैं किन्तु समाज, संस्कृति, राष्ट्र और विश्व से अविरल हैं। उनमें अभिनव कला सर्जक, प्रतिभावान कवि, परखीली दृष्टि संयुक्त चेतसु को जानने की प्रज्ञा विद्यमान है। वे समाज से असंपृक्त रहकर समाज को दिशा देना चाहते हैं और बदले में यदि कुछ चाहते हैं, तो वह है समाजसुधार। प्रकृति जीवी, दिगम्बरवेशी, साधनाशील, प्रियकर्मरत मनवाले वे मूकमाटी से भी बुलवाकर प्रकृति के अन्तस्तल में छिपी अपार संभावनाओं और संवेदनाओं का दिग्दर्शन कराते हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों महनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

सन्त सहज होते हैं और उनका जीवन सहजता का प्रतिबिम्ब। वे न तो कानों सुनी कहते हैं न आँखों देखी, बल्कि जिसे भोगा है, अनुभव किया है तथा शास्त्र और तर्क की कसौटी पर कसकर देखा है, उसे ही कहते हैं। इसीलिए उनके विचारों में गंगा जैसी ही नहीं, वरन् गंगोत्री जैसी पावनता होती है।

सागर-सी गइराइयाँ, चिन्तन है अभिराम।

त्याग तपस्या प्रकट है, चहुँ दिशि में शुभनाम ॥

प्रवचन पारंगत प्रभो, जन-मन के विश्राम।

गुरुवर विद्या धाम को, शत शत बार प्रणाम ॥

नाम, दाम और चाम के प्रलोभन से परे अध्यात्म के परम रसिक श्रमणोत्तम आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज नाम से 'यथा नाम तथा गुण' हैं, काम से 'सत्यकाम' हैं, काया से जिनवर-सदृश और वाणी से सत्यवादी हैं। उनके वचन 'प्रवचन' और साधना अनुकरणीय है। उनके

द्वारा रचित-कथित साहित्य 'साहित्य' के हितकारी भावों से समन्वित है। वे जो कहते हैं, वह उनका अनुभव है, उनकी भावना है इसीलिये वे प्राणीमात्र के शुभचिन्तक एवं उद्धार के प्रेरक हैं। महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य के संबंध में कहा था कि 'सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति' हुई है अतएव व्युत्पत्तिगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रंथ का ग्रंथ के साथ मिलन है, यही नहीं वरन् यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का अतीत के साथ निकट का मिलन कैसे होता है? आचार्य श्री विद्यासागर जी तो प्राणीमात्र के हितैषी हैं, अतः उनके कृतित्व में भी प्राणी-हित सर्वत्र परिलक्षित होता है। डॉ० शान्ताकुमारी के अनुसार- 'प्रतिभावन तपस्वी कवि आचार्य श्री विद्यासागर जी ने आध्यात्मिक जीवन की अजस्र-धारा का निर्बाध प्रवाहकर ऐसा साहित्य प्रस्तुत किया है, जो हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि बन गया है। उनसे प्राचीनता-अर्वाचीनता, आध्यात्मिकता-आधिभौतिकता, परम्परागत दार्शनिक चिन्तन की गहराई के साथ ही काल मार्क्स के प्रत्यय शास्त्र की गंभीरता का ऐसा वैचारिक सामंजस्य उपस्थापित किया है, जिसके कारण सन्त होकर भी वे इस सदी के नये मानव के प्रतिनिधि बन गये हैं।' आचार्य श्री विशालता और विराटता के दर्शन में विश्वास रखते हैं। यह उचित भी है क्योंकि जिस आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा करनी हो वह तुच्छता में विश्वास कैसे रख सकता है? वे लिखते हैं कि-

कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप मण्डूक।

बरसाती मेंढक नहीं, बरसो घन बन मूक ॥

ऐसे महनीय एवं दुर्लभ संत को पाकर हम सब अपने आप में, अपनी दिगम्बर संस्कृति में गौरव का अनुभव करते हैं और आचार्य श्री के चिरायु होने की कामना करते हैं।

प्रधान संपादक- पार्श्व ज्योति (मासिक)

एल-६५, न्यू इंदिरानगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

अध्यात्म व विज्ञान की जुगलबंदी है 'गुणायतन'

प्राचार्य पं० निहालचंद जैन, बीना (म०प्र०)

मुनि प्रमाणसागर : एक सृजनशील चिन्तक

शाश्वत तीर्थराज श्री शिखर जी, मधुवन (गिरीडीह) झारखण्ड में मुनिश्री के लगातार दो वर्षायोग २००६ व ०७ को सम्पन्न हुए। और इस पावन भूमि पर दो अभिनव परिकल्पनायें मुनिश्री के तत्त्वान्वेषी मन में उभरीं, जो यहाँ की परिस्थितियों की सम्प्रेषक हैं। एक सेवायतन की पृष्ठभूमि और दूसरी 'गुणायतन' के निर्माण की आवश्यकता। मुनिश्री चारों अनुयोगों के गहन अध्येता भेद-विज्ञानी संत हैं। उनकी एक कृति 'जैन तत्त्वविद्या' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है, जिसमें गुणस्थान व मार्गणा जैसे द्रव्यानुयोग के विषय को व्यापक सोच के साथ व्याख्यापित है। यही सोच विशेष रूप से गुणस्थान-विषयक, तीर्थराज को इस पावन धरती पर मूर्तरूप बनकर उभरने जा रही है।

गुणस्थान क्या है?— जैनदर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है, जो जीव के आत्मिक गुणों के विकास की क्रमिक अवस्थाओं का द्योतक है। जीव के भाव या परिणाम क्या सदा एक से रहते हैं? नहीं। मोह और मन वचन काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अन्तरंग भावों में प्रतिक्षण उतार चढ़ाव होता रहता है। जैसे हवा के कारण सागर में निरन्तर लहरें तरंगित होती रहती हैं।

गुणस्थान- भावविज्ञान का बैरोमीटर है।

गुणस्थान- आत्मविकास का दिग्दर्शक है।

गुणस्थान- जीव की बंध और अबंध दशा को स्पष्ट करनेवाला एक दर्पण है।

गुणस्थान- अन्तरंग परिणामों की तरतमता को दर्शानेवाला एक थर्मामीटर है।

गुणस्थान- ऐसी लक्ष्मण रेखा, जो संसार और मोक्ष के फासले के बीच खींची गयी हो।

वस्तुतः गुणस्थान है आत्मविकास के आरोहण और अवरोहण का एक आध्यात्मिक लेखा-जोखा, जो १४ सम्भावनाओं के फ्रेम में सुव्यवस्थित है, जिसे जैनदर्शन में 'गुणस्थान' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

गुणायतन क्या है- पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी के सर्जक मन और अन्वेषी मस्तिष्क ने एक छलांग लगाई और चौदह गुणस्थानों के सुन्दर और आकर्षक

ढंग से प्रस्तुत करने की एक अभिनव योजना को मूर्तरूप देने का संकल्प किया। विज्ञान ने इसमें सहायता की और दृश्य-श्रव्य एड्स के साथ एनिमेशन व मॉडल्स के माध्यम से आत्म-विकास के क्रमिक सोपानों को एक मनोरंजन की पृष्ठ भूमि के साथ अध्यात्म की वह अदृश्य-प्रविधि जो आत्मविशुद्धि एवं मूल स्वभाव को पाने के लिए होती है, शब्द, संगीत व प्रकाश की त्रिवेणी के साथ दृश्य बनाने का एक प्रयोग है।

लेखक अक्टूबर २००८ में 'गुणायतन' का स्थल देखने मधुवन (शिखर जी) गया। जैन म्यूजियम के निकट वह स्थल देखकर ही मन एक अद्भुत अनुभव से रोमांचित हो गया। गुणायतन का 'माडल' देखा तो लगा कि यह धर्मायतन, जैनधर्म के परम्परागत मंदिरों से अलग एक विशेष 'ज्ञानमंदिर' होगा। इस सम्पूर्ण परियोजना के लिए गुरुवर्य संत शिरोमणि आ. श्री विद्यासागर जी का आशीर्वाद भी प्राप्त हो चुका है, जो मुनि श्री प्रमाणसागर जी के लिए प्रेरणा और सम्बल बना है। एक समर्पित कार्यकारिणी का गठन हो चुका है, जिसमें हर रुचि व रुझान के व्यक्ति हैं।

'गुणायतन' है गुणस्थानों के अनुरूप होनेवाली भाव-दशाओं को दर्शानेवाला एक बहुकक्षीय मंदिर, जिसका शिल्प वृत्ताकार रखा गया है और कक्षों में चल-अचल मॉडल्स होंगे। जिनके माध्यम से यह दिखाया जायेगा कि मोही व पापाविष्ट संसारी आत्माएँ कैसे अपने कर्मों को आमंत्रित कर उनका आस्त्रव करता है और कर्मावरण की घटाओं को सघन बनाता है तथा अपनी सम्यक्श्रद्धा और सही दृष्टि धारण कर कैसे उनको क्षीण करता हुआ अपनी मूल स्वभाव शक्तियों को प्रगट करता है? कैसे मोहदशा से निर्मोहदशा की ओर, विकार और विकृति से शुद्धता की ओर बढ़ता है। 'एनिमेशन' के माध्यम से कर्मों के आवेग को रोकने (यानी संवर तत्त्व) और पूर्व संचित कर्मों को तप की आध्यात्मिक प्रक्रिया द्वारा उन्हें क्षय करता है (निर्जरा तत्त्व), तब जाकर आत्मा अपनी विशुद्ध निर्मल दशा को प्राप्त करता है, यही उसकी कैवल्य स्थिति होती है, जहाँ उसके चार घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं। संसार से मोक्ष की अन्तर्यात्रा का दर्पण होगा 'गुणायतन' का ज्ञान मंदिर।

चौदह गुणस्थान क्या हैं, जिन्हें झाँकियों के माध्यम से जीवन्त किया जायेगा?

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और आसक्ति तथा माया पूर्वक संचित करनेवाला, परिग्रह रूप पापों को करनेवाला, संसारी प्रथम गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव होता है, जो रागद्वेष, मोह, ममता, इन्द्रियवासना की गुलामी में रहनेवाला किस प्रकार आसक्ति के ज्वर से तप्त होता हुआ संसार का बर्द्धन करता है। संसार के बहुसंख्यक जीव इसी गुणस्थान में रहते हैं।

सम्यग्दर्शन की भूमिका में आनेवाला अर्थात् सच्चे देव-शास्त्र-गुरुरूप रत्नत्रय में श्रद्धा रखनेवाला चौथा गुणस्थान असंयत सम्यग्दृष्टि का होता है, जिसमें जीव संयम से रहित होता है। इसके पश्चात् वह सम्यग्दर्शन के साथ ही स्थूल रूप से पाँच पापों का त्याग करता हुआ 'संयतासंयत' नामक पाँचवें गुणस्थान में प्रवेश करता है। आगे चारित्र की आराधना महाव्रतरूप करता हुआ साधु बनता है, प्रमादसहित छट्टा प्रमत्तसंयत और प्रमाद रहित सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त करता है। यदि प्रमाद पर पूर्ण व स्थायी विजय प्राप्त करली यानी आत्मजागरण की विशिष्ट दशा को सातिशय अप्रमत्त दशा कहते हैं। इस सातवें गुणस्थान के बाद ८-९ व १० वें गुणस्थान में या तो उपशम श्रेणी चढ़ता है या क्षपक श्रेणी। जब जीव चारित्र-मोहनीय-कर्म का उपशम करता है, तो उपशमश्रेणी और जब चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय करता है, तो क्षपकश्रेणी का आरोहण करता है। गुणायतन में इन दोनों प्रकार की श्रेणियों का अन्तर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जायेगा। क्रमशः अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय नाम से ये गुणस्थान जाने जाते हैं। सातिशय अप्रमत्त दशा के बाद पूर्व में अनुभव में न आयी, ऐसी आत्मविशुद्धि का जब वह अनुभव करता है, तो अपूर्वकरण गुणस्थान होता है। नौवें अनिवृत्तिकरण में स्थूल मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम होता है,

जबकि १०वें में संज्वलन लोभ-कषाय मात्र का अत्यन्त सूक्ष्म उदय रहता है। अर्थात् इसके पूर्व गुणस्थान में संज्वलन क्रोध, मान, माया, और लोभ कषाय का स्थूल रूप या तो क्षय हो जाता है या उपशम। ग्यारहवाँ गुणस्थान कर्मों के उपशम के कारण मिलता है, जो अस्थायी रहता है जबकि बारहवाँ 'क्षीण मोह' गुणस्थान समस्त मोहनीय कर्मों के क्षय से प्राप्त होता है। इस गुणस्थान में आत्मा परमात्मा बनने के निकट पहुँच जाती है और तेरहवें 'संयोग केवली' गुणस्थान में आत्मा चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त करके 'परमात्मा' की कोटि (श्रेणी) में आ जाती है। फिर तेरहवें गुणस्थान के अन्त में विशुद्ध शुक्ल ध्यान के बल से योगों का निरोध करके शेष अघातिया कर्मों को क्षय करके 'सिद्ध' परमात्मा (अशरीरी) बनकर मोक्ष प्राप्त करता है। स्मरण होना चाहिए कि दूसरा 'सासादन' गुणस्थान और तीसरा सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान प्रथम से चढ़ने के लिए नहीं अपितु ४थे ५वें ६ से गिरने के लिए होता है। उक्त गुणस्थानों को गुणायतन में दर्शाया जावेगा।

गुणायतन का निर्माण श्री सम्मद शिखर में क्यों?

समस्त जैन धर्मावलम्बियों का यह तीर्थ, शिरोमणितीर्थ है, जहाँ प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु व पर्यटक आते हैं। अतः जैनधर्म का बोध कराने के लिए तथा पर्यटकों को ध्यान की गुणवत्ता समझाने के लिए 'गुणायतन' का निर्माण एक सकारात्मक सोच है। इसी गुणायतन परिसर में सर्वसुविधायुक्त यात्रीनिवास, संतनिवास, ध्यानमंदिर एवं भव्य जिनमंदिर निर्माण की योजना भी प्रस्तावित है। निश्चित ही, 'गुणायतन' द्रव्यानुयोग का ऐसा मूर्त स्मारक होगा जो भारत का ही नहीं विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बनायेगा। आइये इसके निर्माण में हम अपने पुण्य-द्रव्य का उपयोग कर पुण्यार्जक बनें और जैनसंस्कृति को जीवन्त बनावें।

राज० प्रदेश श्रीसेवायतन समिति के नये प्रमुख

अजमेर, यहाँ राजस्थान प्रदेश श्रीसेवायतन समिति की एक बैठक संपन्न हुई, जिसमें श्रीमती सुशीला पाटनी (आर.के. मार्बल्स किशनगढ़) राजस्थान प्रदेश महिला प्रकोष्ठ की प्रमुख चुनी गयीं। इसी प्रकार युवा प्रमुख के रूप में श्री प्रकाश पाटनी का चयन किया गया। क्षेत्र के प्रमुख के रूप में श्री ताराचन्द्र जी गंगवाल का चयन किया गया। बैठक में उपस्थित श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया व डॉ० नीलम जैन राष्ट्रीय अध्यक्ष महिला प्रकोष्ठ श्रीसेवायतन ने कहा कि श्री सम्मद शिखर जी की तलहटी में बसे ग्रामवासियों की बदहाली को खुशहाली में बदलने के लिए हम सब को श्री सेवायतन से जुड़कर अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिये।

प्रश्नकर्ता- सौ० कंचनबाई, अलीगढ़।

जिज्ञासा- क्या सम्मेदशिखर पर जन्म लेनेवाले त्रस व स्थावर जीव निकटभव्य ही होते हैं?

समाधान- सम्मेदशिखर शाश्वत निर्वाण धाम है। इसके संबंध में सबसे विस्तृत वर्णन 'श्रीसम्मेदशिखर माहात्म्यम्' (रचयिता- श्री लोहाचर्य), में उपलब्ध होता है। आपके प्रश्न के समाधान में, इस ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है-

वदन्ति मुनयश्चैवं केवलज्ञानसंयुताः।

भव्यराशेः कीदृगपि पापिष्ठस्तत्र तिष्ठति॥ २६॥

एकोनपञ्चाशज्जनमध्ये सोऽपि प्रमुच्यते।

एकेन्द्रियेभ्यः संसार आ पञ्चेन्द्रियजन्तवः॥ २७॥

ये तत्र भागादुत्पन्ना नानानामाकृतिप्लुताः।

गणितव्याः भव्यराशेश्चान्येषां तत्र नोद्भवः॥ २८॥

अर्थ- केवलज्ञानी मुनिराज ऐसा कहते हैं कि, भव्य राशि का कोई भी, कैसा भी, पापी जीव सम्मेदशिखर पर उठरता है या बैठता है तो ४९ भवों के अन्दर ही, वह मुक्त हो जाता है। इस संसार में एकेन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों में, जो नाम कर्म की विभिन्नता से अनेकानेक आकृति वाले हैं, वे भव्य राशि के हिस्से से सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर उत्पन्न होते हैं, वे निश्चय ही उनचास भवों के भीतर मोक्ष जाने योग्य भव्य जीव हैं। भव्य राशि से अन्य जीवों का वहाँ जन्म ही नहीं होता है। (पृष्ठ ११-१२)।

यहाँ ऐसा विचार उठता है कि क्षेत्रपरिवर्तन के अन्तर्गत अभव्य को भी पूरे लोक में उत्पन्न होना होता है। तब उपर्युक्त कथन की धारणा कैसे बनाई जाए? इस प्रश्न के उत्तर में पं० माणिकचंद जी कौन्देय ने लिखा है कि जैसे भवपरिवर्तन में वैमानिक देवों के ३२ या ३३ सागर आयुवाले प्रकरण, या भावपरिवर्तन में तीर्थकर आहारद्विक, प्रकृतिबंधयोग्य कषायाध्यावसायस्थान और अनुभाग- बंधाध्यवसायस्थान छोड़ने पड़ते हैं, उसी तरह क्षेत्रपरिवर्तन में १७० सम्मेदशिखर छोड़ने पड़ते होंगे।

उपर्युक्त प्रकरण के अनुसार सम्मेदशिखर सिद्ध क्षेत्रों (सभी ढाई द्वीप संबंधी १७०) पर उत्पन्न होने वाले सभी त्रस व स्थावर जीव निकटभव्य ही होते हैं।

प्रश्नकर्ता- पं० गुलझारी लाल जैन, रफीगंज।

जिज्ञासा- क्या नारकी जीवों का मूल शरीर

सप्तधातुमय होता है या यह उनकी विक्रिया है?

समाधान- आपने अपनी जिज्ञासा के साथ 'जैन तत्व विद्या' पृष्ठ ६८ का प्रमाण भेजा है, जिसके अनुसार वैक्रियिक शरीर होने के बाद भी अनका शरीर सप्तधातुमय होता है।

आपने दूसरा प्रमाण तत्त्वार्थवार्तिक पृष्ठ ४४५ (३/३) का भेजा है, जिसके अनुसार 'यद्यपि उन नारकियों का शरीर वैक्रियिक है तथापि उसमें इस औदारिक शरीरगत मलमूत्रादि से अधिक खँकार, मूत्र, मल (टट्टी), रुधिर, मज्जा, पीव, वमन, मांस, केश, हड्डी, चर्म आदि बीभत्स सामग्री रहती है, इसलिए उनकी देह अति अशुभतर है।'

उपर्युक्त आगम प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि नारकियों के शरीर में धातुएँ होती हैं और वे धातुएँ, महान अशुभनामकर्म के उदय के कारण अत्यंत दुर्गन्धयुक्त एवं सड़ी हुई अशुभ होती हैं।

हम सभी स्वाध्यायी जनों की यह धारणा बनी हुई है कि वैक्रियिक शरीर धातुमय नहीं होता। जबकि आगम में वैक्रियिक शरीर की परिभाषाओं में यह कहीं भी लिखा हुआ नहीं मिलता कि वैक्रियिक शरीर सप्तधातुमय नहीं होता है। सर्वार्थसिद्धि के अनुसार (२/३६) "अणिमा महिमा आदि आठ गुणों के ऐश्वर्य के संबंध से एक, अनेक, छोटा, बड़ा आदि नाना प्रकार का शरीर करना विक्रिया है। वह विक्रिया जिस शरीर का प्रयोजन है, वह वैक्रियिक शरीर है।" मैंने पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज से जब इस संबंध में चर्चा की थी, तब उन्होंने कहा था कि किस शास्त्र में ऐसा लिखा है कि वैक्रियिक शरीर सप्तधातुरहित होता है? अर्थात् वैक्रियिक शरीर के सप्तधातुरहित होने का प्रकरण आगम में नहीं मिलता। अतः हम सबको अपनी धारणा उपर्युक्त प्रमाणनुसार ऐसी बना लेनी चाहिए कि नारकियों के शरीर में अत्यंत अशुभ रुधिर, हड्डी आदि धातुएँ स्वभाव से पाई जाती हैं।

प्रश्नकर्ता- श्री रवीन्द्र जैन, ललितपुर।

जिज्ञासा- समवशरण की वापिकाओं एवं भामण्डल में सभी जीवों को अपने-अपने सात-सात भव कैसे दिखाई पड़ जाते हैं? चमत्कार कुछ समझ नहीं आता?

समाधान- समवशरण में जीवों को, वहाँ स्थित वापिकाओं तथा भगवान् के भामण्डल में सात-सात भव दिखाई पड़ते हैं। श्री तिलोयपण्णत्ति गाथा ८१६ में इस

प्रकार कहा है-

उववण-वावि-जलेहिं, सिन्ता पेच्छंति एवक-भव जाइं।
तस्स णिरिक्खण-मेत्ते, सत्त-भवातीद-भावि जादीओ॥

४/८१६ ॥

अर्थ- उपवन की वापिकाओं के जल से अभिषिक्त जन-समूह एक भवजाति (जन्म) को देखते हैं, तथा उनके (वापी के जल में) निरीक्षण करने पर अतीत एवं अनागत सम्बन्धी सात भव-जातियों को देखते हैं।

श्री तिलोयपण्णत्ति गाथा ९३५ में इस प्रकार कहा है-
भव-सग-दंसण-हेदुं, दरिसण-मेत्तेण सयल-लोयस्स।
भामंडलं जिणाणं, रवि-कोडि-समुज्जले जयइ ॥ ४/९३५ ॥

अर्थ- जो दर्शन-मात्र से ही सब लोगों को अपने-अपने सात भव देखने में निमित्त है और करोड़ों सूर्यों के सदृश उज्ज्वल है, तीर्थकरों का ऐसा वह प्रभामण्डल जयवन्त होता है।

समवशरण की वापिकाओं में तथा 'भामण्डल में अलग-अलग जीवों को, अपने-अपने सात-सात भव दिखने के अतिशय (चमत्कार) का अभिप्राय 'पं० रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व' पृष्ठ १२१४ पर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है- "वापिका जल व भामण्डल में सात भव लिखे नहीं रहते, किन्तु तीर्थकर भगवान् की निकटता के कारण वापिका जल व भामण्डल में इतना अतिशय हो जाता है कि उनके अवलोकन से अपने सात भवों के ज्ञान का क्षयोपशम हो जाता है।" स्थूल रूप से सात भवों के ज्ञान का क्षयोपशम हो जाने पर भी, जिसका उस क्षयोपशम की तरफ उपयोग नहीं जाता या जो सूक्ष्म रूप से जानना चाहता है वह प्रश्न कर लेता है और दिव्यध्वनि के सुनने से उसका स्वयमेव समाधान हो जाता है। भगवान् के मोहनीय कर्म का अभाव हो जाने से वे इच्छापूर्वक किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देते।

आशा है आपको उचित समाधान प्राप्त हो गया होगा।

प्रश्नकर्ता- पं० नरेन्द्र जैन, सागर।

जिज्ञासा- एक समय में कितनी कार्मण वर्गणाएँ बँधती हैं और उनका बँटवारा किस प्रकार होता है?

समाधान- आपकी जिज्ञासा के समाधान में गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १९१ से १७९ में अच्छी तरह वर्णन किया गया है। उसी के आधार से यहाँ उत्तर दिया जा रहा है-

प्रत्येक जीव प्रतिसमय समयप्रबद्ध प्रमाण (सिद्धराशि के अनन्तवें भाग अथवा अभव्य राशि से अनन्तगुणा) पुद्गल (कार्मणवर्गणा) द्रव्य को कर्मरूप ग्रहण करता है।

यदि आयुर्कर्म का अपकर्ष काल हो, तो उपर्युक्त कार्मण वर्गणाएँ आठों कर्म रूप अथवा अन्य कालों में सात कर्म आदि रूप परिणमन करती हैं। इस संख्या में से सबसे अधिक भाग वेदनीय कर्म को मिलता है, क्योंकि वह संसारी जीवों को सुख-दुख का कारण है और उसकी निर्जरा अधिक होती है। इससे कम भाग मोहनीय कर्म को मिलता है, उससे कम भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म को समान मिलता है, उससे कम भाग नाम और गोत्र कर्म को आपस में समान मिलता है। सबसे कम भाग आयुर्कर्म को मिलता है। जिस गुणस्थान में जितने कर्मों का बंध होता है, उपर्युक्त समय प्रबद्ध प्रमाण का उतने ही कर्मों में बँटवारा हो जाता है। यह मूल प्रकृति का बँटवारा हुआ।

उत्तर प्रकृतियों में अपने क्रमानुसार ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा मोहनीय के भेदों में हीन-हीन द्रव्य मिलता है। जैसे- ज्ञानावरणीय को प्राप्त द्रव्य का सबसे ज्यादा भाग मतिज्ञानावरण को, उससे कम श्रुतज्ञानावरण को, उससे कम अवधिज्ञानावरण को आदि-आदि मिलता है। नाम व अन्तराय कर्म के भेदों में क्रमशः अधिक-अधिक द्रव्य मिलता है, जैसे- सबसे कम द्रव्य दानांतराय को, उससे अधिक लाभान्तराय को, उससे अधिक भोगान्तराय को आदि-आदि मिलता है। वेदनीय, गोत्र और आयुर्कर्म के भेदों में बँटवारा नहीं होता, क्योंकि इनकी एक काल में एक ही प्रकृति बँधती है और उसे ही अपनी मूलप्रकृति का पूरा द्रव्य मिलता है। जैसे- जब सातावेदनीय का बंध होता है, तब असातावेदनीय का नहीं होता। इसलिए वेदनीय को प्राप्त पूरा द्रव्य सातावेदनीय को प्राप्त होता है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय, इन तीन मूल प्रकृतियों का जो अपना द्रव्य है, उसमें अनन्त का भाग देने से एक भाग तो सर्वघाति का द्रव्य होता है तथा शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण द्रव्य देशघाति का होता है।

जिज्ञासा- पहले जैन मंदिरों के शिखरों तथा दरवाजों की चौखटों पर भी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। इसका क्या अभिप्राय था?

समाधान- आपके प्रश्न के उत्तर में पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपनी पुस्तक, 'जैन साहित्य और इतिहास' में इस प्रकार कहा है- "कुछ सज्जन ऐसा कहते हैं कि ये मूर्तियाँ शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए स्थापित की जाती रही हैं, जिससे वे बाहर से ही भगवान् के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कर सकें। यह बात कहने-सुनने में तो बहुत अच्छी

मालूम होती है, परन्तु अभी तक इस विषय में किसी शिल्प-शास्त्र, प्रतिष्ठापाठ या पूजा प्रकरण का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया है। और यह बात कुछ समझ में भी नहीं आती है कि जो लोग दर्शन-पूजन-पाठादि के अधिकारी ही नहीं माने जाते हैं, उनके लिए शिखरों पर या द्वारों पर मूर्तियाँ जड़ने का परिश्रम क्यों आवश्यक समझा गया होगा। यदि इन लोगों को दूर से दर्शन करने देना ही अभीष्ट होता, तब तो मंदिरों के बाहर दीवारों में या आगे खुले चबूतरों पर ही मूर्तियाँ स्थापित कर दी जातीं---। मेरी समझ में तो शिखर पर या द्वार पर जो मूर्तियाँ रहती हैं उनका उद्देश्य केवल यह प्रकट करना होता है कि उस मंदिर में कौन सा देव प्रतिष्ठित है। अर्थात् वह किस देवता का मंदिर है। वास्तव में वह मुख्य देव का संक्षिप्त चिन्ह होता है, जिससे लोग दूर से ही पहचान जाएँ कि यह अमुक का मन्दिर है---।”

तारीख ९ अगस्त १९५३ के 'नव भारत टाइम्स' में श्रीमती गोमती रावत ने 'खजुराहा' शीर्षक लेख में लिखा है- "यहाँ के गर्भगृह के दरवाजों पर उत्कीर्ण देव प्रतिमा को देखकर ही प्रधान देव का अनुमान किया जा सकता है।”

प्रश्नकर्ता- नवीन कुमार जैन, बरेली।

जिज्ञासा- अभाव के कितने भेद होते हैं, समझाने का कष्ट करें?

समाधान- जैनाचार्यों ने अभावों को मुख्यतः चार भेदों में वर्गीकृत किया है। जिनका लक्षण कसायपाहुड़, आप्तमीमांसा टीका तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका आदि में प्राप्त होता है। जिनका संक्षेप इस प्रकार है-

१. **प्राग् अभाव-** वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव है, उसे प्राग् अभाव कहते हैं। अथवा वर्तमान पर्याय में आगे होनेवाली पर्याय का अभाव होना प्राग् अभाव है। जैसे दूध में दही का अभाव या दही में छाछ का अभाव।

२. **प्रध्वंस अभाव-** वर्तमान पर्याय में बीती हुई पर्याय के अभाव को प्रध्वंस अभाव कहते हैं, जैसे- दही में दूध का अभाव या छाछ में दही का अभाव।

३. **अन्योन्य अभाव-** द्रव्य की एक वर्तमान पर्याय में उसी द्रव्य की विगत और आगे होनेवाली सभी पर्यायों के अभाव को अन्योन्य अभाव कहते हैं तथा वर्तमान पर्याय में उसी द्रव्य की अन्य-अन्य वर्तमान पर्यायों का अभाव अन्योन्याभाव है। जैसे- दही में घास, भूसा, रोटी का अभाव तथा जैसे घी में मिट्टी, पत्थर लकड़ी आदि पुंदग्ल द्रव्य

की अन्य-अन्य पर्यायों का अभाव अन्योन्याभाव है।

४. **अत्यन्त अभाव-** अन्य द्रव्य का, अन्य द्रव्य में अभाव होना या एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव होना अत्यन्ताभाव है। जैसे पुद्गल में जीव का अभाव आदि।

श्री धवलाकार ने अभाव के दो भेद कहे हैं, जो इस प्रकार हैं-

१. **पर्युदास अभाव-** किसी एक वस्तु के अभाव द्वारा दूसरी वस्तु का सद्भाव दर्शाना पर्युदास अभाव है, जैसे- प्रकाश का अभाव ही अंधकार है।

२. **प्रसज्य अभाव-** वस्तु के अभाव मात्र को दर्शाना प्रसज्य अभाव है। जैसे- गधे के सिर पर सींग का अभाव।

प्रश्नकर्ता- ब्र. नवीन जैन, देहली।

जिज्ञासा- मानुषोत्तर पर्वत के उस तरफ असंख्यात द्वीप समुद्रों में जो भोगभूमि और उसमें रहने वाले तिर्यच हैं, उनके बारे में बताइये?

समाधान- मानुषोत्तर पर्वत के उस तरफ नागेन्द्र पर्वत पर्यन्त जो असंख्यात द्वीप हैं, उनमें जघन्य भोगभूमि की रचना है। इनके संबंध में सिद्धान्तसारदीपक अध्याय- १० श्लोक नं० ३९६ से ४०१ तक इस प्रकार कहा है-

‘इन जघन्य भोगभूमियों में मात्र तिर्यच रहते हैं, जिनकी संख्या असंख्यात है। ये सभी तिर्यच गर्भज, भद्र-स्वभावी, शुभपरिणति से युक्त, पञ्चेन्द्रिय और क्रूरतारहित होते हैं। इनका जन्म युगलरूप से ही होता है। वे मृग आदि शुभ जातियों में उत्पन्न होते हैं। एक पत्य की आयुवाले एवं वैरभाव से रहित होते हैं। तथा कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोग भोगते हैं। ये जीव मंदकषायी होते हैं, अतः मरकर स्वर्ग ही जाते हैं। जिन्हें सम्यग्दर्शन नहीं होता, वे भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं। जो अज्ञानी जीव सम्यग्दर्शन और व्रतों से रहित हैं तथा कुपात्रदान से उत्पन्न कुछ पुण्य, उससे जो निन्दनीय भोगों की वाञ्छा करते हैं, वे जीव मरकर इस भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। यहाँ कीड़े-चींटी-मच्छर आदि छोटे जन्तु, क्रूरपरिणामी जीव एवं विकलेन्द्रिय जीव कभी उत्पन्न नहीं होते।

जम्बूद्वीपपण्णत्तिसंगहो, अधिकार ११, श्लोक नं० १८६ से १८९ तक इन तिर्यचों का वर्णन है, जिसके अनुसार ये सभी तिर्यच दो हजार धनुष ऊँचे, सुकुमार, कोमल अंगों वाले, मंदकषायी, फलभोजी और एक दिन छोड़कर आहार करनेवाले होते हैं।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा-२८२ ००२, उ० प्र०

अतिशय क्षेत्र निमोला का परिचय

राजस्थान प्रान्त के टोंक जिले में राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या १२ पर टोंक शहर से कोटा जाते हुए १२ कि.मी. पर मेहन्दवास ग्राम से पूर्व दिशा की ओर ८ कि.मी. की दूरी पर तथा टोंक से दक्षिण दिशा की ओर १५ कि.मी. की दूरी पर ग्राम सोनवाँ से अरनियामाल होते हुए श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र निमोला स्थित है।

स्वतन्त्रता के पूर्व निमोला ग्राम उनियारा ठिकाने की जागीर था। उनियारा दरबार व ठिकानेदार निमोला की भगवान् पार्श्वनाथ में असीम आस्था थी। राजा साहब द्वारा एक बार भगवान् पार्श्वनाथ के समक्ष जागरण करवाया गया, जिसमें एक नर्तकी ने नृत्य करते हुए प्रतिमाजी की ओर चुम्बन और आलिंगन का दुस्साहस पूर्ण संकेत किया ऐसा करते ही वह कीलित हो गई। सभी लोग इस घटना पर आश्चर्य चकित थे, तब राजा साहब ने ग्रामीणों के साथ मिलकर भगवान् की स्तुति कर क्षमा याचना की। इसके बाद ही नर्तकी सामान्य स्थिति में आई। इस चमत्कार से प्रभावित होकर राजा साहब ने भगवान् के मन्दिर के नाम ढोहली (कृषि फार्म) दी, जो आठ बीघा दस बिस्वा भूमि है।

यह दिगम्बर जैनआम्नाय का मन्दिर है, जहाँ मूल नायक भगवान् पार्श्वनाथ की नौफणी चमत्कारी प्रतिमा विराजमान है। यहाँ स्थित मन्दिर लगभग ४५० वर्ष पुराना था, जो देखभाल के अभाव में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। संवत् २०४५ में समाज ने मन्दिर के भवन का जीर्णोद्धार कराने का विचार किया और उसे ठण्डा कराकर नवीन मन्दिर बनाने का मानस बनाया, तब दो विचार सामने आए क्या मन्दिर बाहर खुले में बड़ी जगह लेकर बनाया जाय या इसी स्थान पर गाँव के मध्य में ही बनाया जावे। इसके लिए भगवान् की प्रतिमाजी के समक्ष दो पर्चियाँ एक अबोध बालक से उठवाई गई। पर्ची में यही आया कि मन्दिर इसी स्थान पर बनाया जाए। संवत् २०४६ अक्षय तृतीया के दिन पुराने जीर्ण-शीर्ण मन्दिर को ठण्डा (विसर्जन) करके नवनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ और प्रतिमाजी को मन्दिर के पास में बाहरी कोटड़ी में पूर्ण भक्तिभाव से अस्थाई तौर पर विराजित कर दिया गया। नवीन मन्दिर व वेदी-प्रतिष्ठा का कार्य पूर्ण विधि-विधान से विधानाचार्य जी के

निर्देशन में कराकर वैशाख सुदी ७ संवत् २०५२ को प्रतिमा जी को वेदी में विराजमान किया गया। उक्त समारोह में कबूतर का एक जोड़ा वेदी में भगवान् के पीछे आकर बैठ गया एवं अपार जनसमूह होने के बावजूद भी विचलित नहीं हुआ। यह भगवान् के यक्ष-यक्षिणी का स्वरूप है, जिसका फोटो खींचने का प्रयास किया गया लेकिन वह जोड़ा फोटो में नहीं आया। यह जोड़ा सदैव भगवान् की प्रतिमा जी के ईर्द-गिर्द रहता है। ऐसी मान्यता है कि इस अतिशय क्षेत्र पर देवगण वाद्ययंत्रों से भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति एवं भक्ति करते हैं। उन यंत्रों की ध्वनि मन्दिर के आस-पास रहनेवाले भी सुनते हैं। प्रतिवर्ष इस अतिशय क्षेत्र पर पौष बदी दशमी को जागरण व ग्यारस को वार्षिक मेले का आयोजन होता है।

प्रशस्ति-

मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ नौफणी चमत्कारी पद्मासन सफेद संगमरमरी पाषाण चतुर्थकालीन ९८.५ सेमी. (३९ इंच) मनोज्ञ एवं संकल्पपूरक प्रतिमा पर प्रशस्ति नहीं है मणीदार बालों की तीन बालियाँ, सामान्य जूड़ा, कान कलात्मक कन्धे तक, भौहें लहरियादार, नासिका चौड़ी, टोड़ी चपटी, गले में त्रिवली कलात्मक अष्ट पहलूदार श्री वस्त्र का बड़ा चिन्ह उभरा हुआ दो बड़ा बलयाकार स्तन चिन्ह, रोमाग्रित दिगम्बर लिंग, हाथ पैरों में पद्म का चिन्ह, हाथ की अँगुलियों में लम्बे नाखून पोरों को रेखाएँ, पैरों पर उँगलियों में पोरों की रेखाएँ पीठासन पर सुन्दर फूल एवं बैल बूटे फणावली काफी ऊँची उठी हुई एकदम छत्राकार झुकी हुई सर्वांग सुन्दर सर्व प्रमाणित।

अन्य प्रतिमाएँ श्री आदिनाथ सफेद संगमरमरी पाषाण, श्री नेमिनाथ सफेद संगमरमरी पाषाण, आदिनाथ देशी कृष्ण पाषाण, पार्श्वनाथ नौफणी पीतल विराजमान है एवं जिन मुद्रा शिलापट्ट सलेटी पाषाण का है, जिस पर ६८ पद्मासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, जो कि सभी खण्डित है जो लगभग १०वीं ११वीं शताब्दी का लगता है।

सुविधाएँ- क्षेत्र पर मेहन्दवास व टोंक से जाने के लिए यातायात के साधन उपलब्ध है। ट्यूबवेल लगा है व सुविधायुक्त धर्मशाला है पूर्व सूचना देने पर पूजन विधान व भोजन की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

क्षेत्र की प्रबन्ध समिति द्वारा प्रकाशित

पूज्य मुनि श्री सुमतिसागर जी का पुण्य समाधिमरण

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य पूज्य मुनि श्री निर्णयसागर जी महाराज, मुनिश्री प्रणम्यसागर जी, मुनि श्री चन्द्रसागर जी एवं मुनि श्री सुमतिसागर जी का मंगल प्रवेश अशोक नगर (म०प्र०) में २३ जनवरी २००९ को जब हुआ, सारे नगरवासियों ने पूज्य मुनिवरों की भव्य अगवानी की। किसे मालूम था कि तप, संयम की सुरभि से पावन यह नगर सहस्रों वर्षों तक मुनि श्री सुमतिसागर जी महाराज की समाधिस्थली के गौरव से मंडित हो जायेगा। ४५ दिवसीय अशोक नगर प्रवास में मुनिश्री की अस्वस्थता को लेकर सारा समाज चिंतातुर रहा। अनेकों स्थानों से मुनिश्री के दर्शन, अर्चन हेतु श्रावकों का ताँता लगा रहा।

सभी जिनालयों में भक्तामर जी का अखण्ड पाठ, श्री शांतिनाथ विधान, शांति जाप, आदि का अनुष्ठान किया गया। भक्तिभावों द्वारा हर हृदय रोम-रोम से यही प्रार्थना करता रहा है! शांतिप्रदाता प्रभो! मुनि श्री को आरोग्य प्रदान करें। दिगम्बर जैन पंचायत अध्यक्ष श्री रमेश चौधरी ने प्रख्यात चिकित्सा विशेषज्ञों की सेवायें उपलब्ध कराने में पूर्ण प्रयास किया। आचार्यश्री को अनवरत रूप से मुनिश्री के स्वास्थ्य से अवगत कराते रहे। बाहरी व्यवस्था पंचायत-पदाधिकारी देख रहे थे, तो आंतरिक व्यवस्था में मुनि श्री निर्णयसागर जी ससंघ, ब्र० भैया श्री अरुण जी, भैया सचिन जी, राजकुमार जी, त्रिलोक भैया जी, अशोक भैया जी ने सेवा एवं धर्म आराधना द्वारा मुनिश्री के भावों को उत्कृष्ट बनाये रखा। मुनिश्री के सल्लेखना का समाचार ज्ञात होते ही ललितपुर से पूज्य मुनि श्री अजितसागर जी महाराज, एलक श्री विवेकानंद जी महाराज अल्प समय में अशोक नगर पहुँचे और मुनिश्री को सेवा-सम्बोधन आदि के द्वारा

परिणामों को निर्मल बनाने में रत रहे। मुनिश्री सुमतिसागर जी के सान्निकट मुनि श्री प्रणम्यसागर जी हर समय बने रहे व बारह भावना का चिन्तन कराते रहे।

मुनि श्री सुमतिसागर जी ने समता, संयम, आत्म-आराधना करते हुये नश्वर शरीर के प्रति विरक्त हो, "अरिहंत बनना है मुझे, सिद्ध बनना है मुझे, वीर तेरी वंदना का छंद बनना है मुझे" इत्यादि भव्य भावना भाते हुये आत्मा में स्थित हो देह का परित्याग कर दिया। स्मरण हो, अशोक नगर जिले के अतिशय क्षेत्र श्री थूबौन जी में आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज से दीपावली के दिन पू० मुनि श्री सुमतिसागर जी महाराज ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। उसी जिले की वसुधा पर ८ मार्च २००९ गुरुवार, फाल्गुन सुदी १२ को, पुण्य नक्षत्र में ११.४५ बजे नश्वर देह का परित्याग कर दिया। जब विमान में मुनि श्री सुमति सागर जी महाराज को समाधि स्थल ले जाया गया, तो सारा नगर श्रद्धानवत हो साथ हो गया। समूचे नगर के प्रतिष्ठान बंद थे। जगह-जगह से श्रद्धालुओं का समाधि-स्थल पर जमावड़ा होता गया। समाधि-स्थल सुमति उद्यान में विधि-विधान, मंत्रोच्चार के साथ संत शिरोमणि विद्यासागर जी महाराज एवं सुमतिसागर जी महाराज के जयघोष से गगन गूँज उठा। ४४ वर्ष की उम्र, १७ वर्षों की मोक्षमार्ग की साधनावाले, धर्म प्रभावना में रत साधक मुनि श्री सुमतिसागर जी को, जिनके गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी जैसे तेजस्वी साधक हों, अपना लक्ष्य पाना दुष्कर नहीं होगा।

भानु चौधरी

मंत्री श्री दि० जैन पंचायत
अशोकनगर

श्रवणबेलगोला में आयोजित-शास्त्र परिषद् शिविर-अधिवेशन स्थगित

अ.भा. दिगम्बर जैन शास्त्र परिषद् का ग्रीष्मकालीन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर व अधिवेशनादि जो कि २१ जून से २६ जून २००९ तक श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में आयोजित था, माननीय डॉ० श्रेयांसकुमार जैन (अध्यक्ष-शास्त्रपरिषद्) के निर्देशानुसार अपरिहार्य कारणों से स्थगित हो गया है। अतः सम्बन्धित प्रशिक्षणार्थी एवं माननीय सदस्यगण इस सूचना से अवगत हों। शिविर आयोजन की अगली सूचना निर्णयानुसार आगे यथाशीघ्र प्रसारित की जायेगी।

पं० पवन कुमार शास्त्री 'दीवान'
प्रचार मंत्री- शास्त्रपरिषद्

सदलगा में महावीर जयन्ती एवं कल्याणोदय गोशाला का उद्घाटन सम्पन्न



आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज की जन्म-स्थली सदलगा (जिला-बेलगाँव, कर्नाटक) नगर में महावीर-जयन्ती महोत्सव आचार्यश्री के धर्म प्रभावक शिष्य मुनि श्री समतासागर जी एवं एलक श्री निश्चय सागर जी महाराज के सान्निध्य में सानन्द सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर 'कल्याणोदय तीर्थ' में प्रातः बेला में जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक एवं पूजन सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् 'आचार्य विद्यासागर संस्कार केन्द्र' पाठशाला के नन्हें-मुन्हें करीब २०० बच्चों द्वारा नगर के जिनालयों की वन्दना करते हुए प्रभातफेरी निकाली गई। बच्चे अपने हाथों में छोटी-छोटी धर्मध्वजाएँ लिए थे, एवं उत्साहपूर्वक जय-जयकार के नारे लगा रहे थे। प्रभातफेरी में सम्मिलित सभी बच्चों के लिए स्वल्पाहार (नाश्ता) वितरित किया गया। तदुपरान्त इसी प्रभातफेरी और श्रावक श्राविकाओं के साथ मुनिसंघ प्रवचन स्थल के लिए रवाना हुआ। बैण्ड बाजों की धार्मिक-ध्वनि के साथ श्रावक श्राविकाएँ भक्ति-भजन गा रहे थे। मुनिसंघ के मंचासीन होते ही स्थानीय व्रती बहिनों द्वारा एवं पाठशाला के बच्चों द्वारा पृथक्-पृथक् मंगलगीत तथा मंगलाचरण किया गया। तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी एवं आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चित्र का अनुकरण महावीर प्रसाद जी दिल्लीवालों एवं नगर के जैन-जैनेतर गणमान्य नागरिकों द्वारा किया गया।

दया के देवता, अहिंसा के अवतारी भगवान् महावीर स्वामी के पावन जन्म कल्याणक दिवस (७ अप्रैल २००९) पर 'कल्याणोदय गोशाला' का उद्घाटन कर एक अतिविशिष्ट कार्य सम्पन्न किया गया। उद्घाटनकर्ता ब्र. पदम भैया जी सहित दयाप्रेमी जैन-जैनेतर गणमान्य नागरिक रहे, जिन्होंने यह कार्य मुनिसंघ की पावन उपस्थिति में किया। उपस्थित जानवरों को गुड़, चारा, घास आदि खिलाकर अहिंसा परमोधर्म: इस धर्मसूत्र को सार्थक किया।

एलक श्री निश्चयसागर जी एवं मुनि श्री समतासागर जी द्वारा उपस्थित जन समुदाय को भगवान् महावीर स्वामी के जीवन और सिद्धान्तों पर धार्मिक, मार्मिक एवं सारगर्भित प्रवचन दिया गया। मुनिश्री ने कहा कि महावीर कभी हुए थे इतिहास में, हमने उन्हें नहीं देखा। पर इस नगर में जन्मे एक महावीर और हैं, जिन्हें आज सारा विश्व आचार्य विद्यासागर के नाम से जान रहा है और साक्षात् अपनी आँखों से देख रहा है। अहिंसा की प्रतिमूर्ति और जीवदया के देवता के इस नगर में गोशाला के शुभारंभ अवसर पर उपस्थित होना, अपने आप में बड़े सौभाग्य की बात है। कर्नाटक के सन्त गुरुवर आचार्यश्री ने आत्म-साधना और धर्म-प्रभावना के क्षेत्र में आज जो कर दिखाया है वह दुनिया के लिए किन्हीं आश्चर्यों से कम नहीं है। इस अवसर पर महावीर प्रसाद जी दिल्ली सहित स्थानीय अनेक श्रावक बन्धुओं ने गोशाला के लिए आर्थिक सहयोग घोषित किया। इस अवसर पर उपस्थित आसपास के नगरवासियों ने मुनिसंघ से अपने नगर में पधारने के लिए श्रीफल अर्पित कर निवेदन किया। कन्नड एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में मंच का सफल संचालन सदलगा निवासी श्री माणिकचंद्र गडे ने किया।

सेक्रेटरी- श्री विद्यासागर दि० जैन ट्रस्ट
सदलगा (बेलगाँव) कर्नाटक

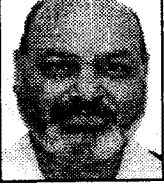
श्री डी० के० जैन (१९२५-२००९) द्वारा देहदान

दिल्ली के पूर्व पार्षद डी. के. जैन का देहदान का संकल्प, उनकी मृत्यु के बाद, उनके परिवार के लोगों ने उनका शरीर आखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली में दान कर पूरा किया। (१५.३.२००९)

१९९७ में दधीचि-देह-दान-समिति दिल्ली के तहत श्री देवेन्द्र कुमार जैन ने देहदान की बसीयत की। उनकी अन्तिम इच्छा का पालन करते हुये उनके परिजनों ने उनकी आँखें गुरुनानक आई सेन्टर दिल्ली को दान में दी, जिससे आज दो इन्सान इस संसार को देख सकते हैं एवं पूरा शरीर (AIIMS) अस्पताल को दान कर दिया।

मधुर जैन पुत्र-स्व. श्री डी.के. जैन, ९०, सूर्य निकेतन, दिल्ली

जिनभाषित के नये आजीवन सदस्य



श्री संतोष कुमार जैन

'घड़ी साबुन वाले'

१/१०८, पुरानी गल्ला मण्डी रोड,
कटरा वार्ड, सागर- ४७०००२ (म०प्र०)



श्री मुन्नालाल जैन लम्बरदार
सागर कापी उद्योग, खुरई रोड,
सागर- ४७०००२ (म०प्र०)



श्रीमती प्रमिला जी सराफ

द्वारा- श्री अरुण कुमार सराफ
डी-१६, बालक कॉम्प्लेक्स, तिली रोड
के सामने, सागर- ४७०००२ (म०प्र०)

श्री पोपटलाल गुलाबचंद्र दो भाड़ा
द्वारा- मे० णमोकार हार्डवेयर्स
तालुका माढ़ा, जिला- सोलापुर
४१३३०१ (महा०)

श्री अनिल कुमार जैन

नैनधरा वाले, विला वटिका
जैन मन्दिर के सामने गोपालगंज
सागर- ४७०००२ (म०प्र०)

श्री प्रकाश चंद्र जैन

११८, तिलक नगर, एक्सटेन्शन
श्वेताम्बर जैन मंदिर के पास
इन्दौर (म०प्र०)

श्री राजकुमार तलकचंद्र दोसी

द्वारा- मे० महावीर ज्वैलर्स,
पावर हाऊस के सामने अकलुज,
जिला- सोलापुर ४१३१०१ (महाराष्ट्र)

श्रीमती डॉ० स्वाती जैन

द्वारा- श्री अखिलेश जैन
२०४ सी ब्लाक, भाग्योदय तीर्थ परिसर
खुरई रोड, सागर- ४७०००२ (म०प्र०)

श्री अभय वाकलीवाल

१८१८, सुदामा नगर, सेक्टर-डी
इन्दौर- ४५२००९

श्री १००८ पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर

हरोली, तालुका- शिरोल,
जिला- सोलापुर ४१६१०२ (महाराष्ट्र)



श्रीमती सरोज जैन

द्वारा- श्री राजेश कुमार जैन
मोहरे बाड़ा, छत्रसाल
अखाड़े के पास,
इतवारी वार्ड,
सागर- ४७०००२ (म०प्र०)

पं० सागर शास्त्री

प्लॉट नं० २०१, सी-४२, सेक्टर नं०-२
स्वामी नारायण मंदिर के सामने,
मीरा रोड (पूर्व) ठाणे (मुंबई) महाराष्ट्र

श्री उत्तमचन्द्र जी जैन

डी-११, न्यू लाइट कॉलोनी,
टोंक रोड जयपुर (राजस्थान)

बिहारी की गजलें

स्व० श्री बिहारीलाल जी जैन

‘स्व-पर’ के भेद का दिल में

‘स्व-पर’ के भेद का दिल में जो दृढ़ श्रद्धान हो जाए।

मेरी जन्त का दर खुल जा, मेरा निर्वाण हो जाए॥

पकड़ से मोह-जालिम की, जो एक पल भर भी मैं छूटूँ।

तो फिर खुद को समझने का सरो सामान हो जाए॥

मेरी यह देह ‘पर’ है, मैं हूँ केवल शुद्ध आत्म ही।

जो, हो जा धारणा सच्ची, तो सम्यक-ज्ञान हो जाए॥

कषायों की पकड़ में जा फँसा, मिथ्या के आलम में।

मैं इन पर भी फ़तह पाऊँ, अगर यह ध्यान हो जाए॥

बड़े सौभाग्य से सत्कुल मिला, नर-योनि भी पाई।

छवि है वीतरागी मेरी भी, यह ध्यान हो जाए॥

बिहारी पंच परमेष्ठी, ये सब तेरे ही नक्शे हैं।

जो सम्यक-ज्ञान हो जाए, तो केवल-ज्ञान हो जाए॥

‘मिथ्यात’ सा जालिम जो

‘मिथ्यात’ सा जालिम जो, मुझको मिला ना होता।

चक्कर का अनादि से ये सिलसिला न होता॥

निज रूप जो पा जाता, पा जाता नज़ात में भी।

गर कर्म-शत्रु, मेरा, घेरे क़िला न होता॥

अज्ञान के लूटे थे, पुरुषार्थ से छूटे थे।

फिर क्यों न ज़ेरे-दुश्मन, यह काफ़िला न होता॥

मद-मोह में फँसे थे, मिथ्यात के डँसे थे।

अज्ञान से कलेजा, अपना हिला ना होता॥

यूँ ही हमेशा क्रांतिल, मुझको सताया करता।

शुभ-योग से जिनवर में दिल मुबतिला न होता॥

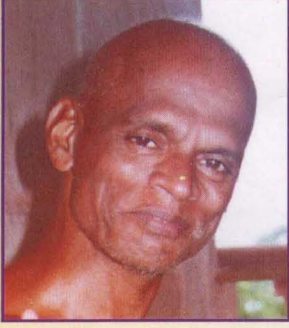
नाचीज़ ‘गैर’ रहजन, तुझको चुनौती मेरी।

कहता न इस तरह जो, बिल्कुल तुला न होता॥

सम्यक्त्व को पाया है, शुभ योग ‘बिहारी’ ने।

इसके बैगर इतना, निर्भय, खुला न होता॥

‘बिहारी की गजलें’ से साभार



मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ

वह था एक जमाना

वह था एक जमाना
हर मानव के दिल में
प्यार के अमृत झरने
झरते थे,
वात्सल्य के
रंगविरंगे
सुमन खिलते थे
और
करुणा का अमिट सागर
शान्तरूप से लहराता था।
लेकिन अब
यह बात कहाँ है?
पाते हैं यत्र-तत्र
सर्वत्र
मारवाड़ के मरुस्थल
जहाँ
छलकपट की लपटें
अहर्निश चलती हैं,
ईर्ष्या की लू
आत्मा में घुसती जा रही है।
इस माया की चकाचौंध में
दया के सागर को भूलकर
मरुस्थल के जल को
पीने दौड़ रहे हैं।

यह मानव जीवन दानवता में न ढल जाये

क्या मेरा
क्या तेरा
दुनिया में है क्या
निजात्मा से प्यारा?
ये है सन्तों का महामन्त्र
जिस मन्त्र से तू भी
अपने आत्मा को
मंत्रित कर ले।
हो जाये
सच्चिदाकार
निराकार
आत्मा का साक्षात्कार।
अरे ओ! भोले प्राणी!
क्यों भूलता है?
भले की बात
गले क्यों नहीं उतरती?
इन अमृत भरे वचनों को
अपने जीवन में स्थान
क्यों नहीं देना चाहता?
यह मानव जीवन
दानवता में न ढल जाये!

प्रस्तुति - प्रो० रतनचन्द्र जैन